राजस्थानी साहित्य और संस्कृति

संपादक : मनोहर प्रभाकर

प्रकाशक : आशा पब्लिशिंग हाउस
जयपुर

प्रथम संस्करण :	१९६५
मूल्य :	पाँच रुपये
प्रकाशक :	मोहनलाल जैन संचालक आशा पब्लिशिंग हाउस चौड़ा रास्ता, जयपुर
मुद्रक :	नवल प्रिंटिंग प्रेस, चौड़ा रास्ता, जयपुर

संपादकीय

साहित्य और संस्कृति की दृष्टि से राजस्थान हमारे देश के समृद्धतम प्रदेशों मे है। किन्तु खेद का विषय है कि इस सरनाम प्रदेश के सास्कृतिक वैभव को प्रकाश में लाने वाला एक भी प्रामाणिक ग्रन्थ आज तक नही लिखा गया है। पिछले अनेक वर्षो से मेरी यह उत्कट लालसा थी कि मैं इस दिशा मे एक विनम्र प्रयास करूँ। किन्तु कुछ तो स्वभावगत प्रमाद और कुछ समयाभाव दोनों ने मिलकर मुझे इस कार्य को हाथ मे लेने की अनुमति नही दी। आखिरकार मुझे लेखन के स्थान पर सम्पादन से ही सन्तोष करना पड़ा और उसका परिणाम आपके सामने है। इस पुस्तक में राजस्थानी साहित्य और संस्कृति के कुछ महत्वपूर्ण पक्षो पर अधिकारी विद्वानो के लेख संग्रहीत है। यह पुस्तक राजस्थान की सास्कृतिक सम्पदा को वांछनीय सीमा तक उद्घाटित करने का दावा तो नही कर सकती, किन्तु राजस्थानी संस्कृति और साहित्य की एक झांकी प्रस्तुत करने का प्रयत्न इसके द्वारा अवश्य किया गया हैं। जिन विद्वानों के लेखकीय श्रम ने इस पुस्तक के कलेवर को सँवारा है, उनके प्रति हम हृदय से उपकृत अनुभव करते हैं। यदि इस पुस्तक के प्रकाशन से राजस्थान के किसी भी विद्वान को इस विषय पर अपनी लेखनी उठाने की प्रेरणा मिल सकी, तो हम अपने प्रयत्न की इस लघुता को सार्थक समझेंगे। पुस्तक की सामग्री जुटाने में 'राजस्थान भारती' तथा 'परंपरा' से हमने जो सहायता ली है, उसके लिए हम इन पत्रिकाओं के सम्पादको, प्रकाशकों एवं लेखकों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

सी. ११८
बापू नगर
जयपुर

मनोहर प्रभाकर

विषय-सूची

पृष्ठ

१. राजस्थान की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि—संपादक १
२. राजस्थानी भाषा की रूप-रेखा—डॉ० मोतीलाल मेनारिया ६
३. राजस्थानी भाषा का अध्ययन और विदेशी विद्वान्—डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी २१
४. राजस्थानी साहित्य—श्री रावत सारस्वत ३२
५. राजस्थानी भाषा के प्रतिनिधि साहित्यकार—डॉ० प्रेमदत्त शर्मा ४८
६. राजस्थान के लोक-गीत—श्री मनोहर प्रभाकर ६२
७. राजस्थानी लोक-कथायें—श्री मनोहर शर्मा ७७
८. राजस्थान के लोक-नृत्य—श्री रावत सारस्वत ९७
९. राजस्थान की गाने वाली जातियाँ—श्री सीताराम लालस १०४
१०. राजस्थानी रंगमच—श्री देवीलाल सामर ११२
११. राजस्थानी चित्रकला—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ११७
१२. राजस्थान के भित्ति-चित्र—श्री रामगोपाल विजयवर्गीय १२५
१३. राजस्थान की भूमि अलंकरण कला—श्री जोगेन्द्र सक्सेना १२९

१

राजस्थान की सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से राजस्थान भारत के उन विरल प्रदेशों मे से है, जिनका नाम अपनी गौरवमयी परम्पराओं के लिये बहुविश्रुत रहा है। वीरता, शौर्य और पराक्रम की प्रतीक यह धरती प्राचीनता की दृष्टि से अपना विलक्षण व्यक्तित्व रखती है। पुरातत्व शास्त्रियों के मतानुसार इस प्रदेश के जोधपुर, जयसलमेर और बीकानेर के रेतीले भागो में कभी हड़प्पा और मोहनजोदड़ो के समान ही प्रागैतिहासिक बस्तियों का निवास था। इसी क्षेत्र में कभी वह प्रातः स्मरणीया सरस्वती नदी भी बहती थी, जिसके तट पर बैठ कर वैदिक ऋषियों ने ऋग्वेद की ऋचाओं का सृजन किया।

पौराणिक गाथाओं मे वर्णित अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं का घटनास्थल भी इस प्रदेश को बताया जाता है। उदाहरण के लिए भूतपूर्व जयपुर रियासत का बैराठ नामक कस्बा ही वह विराटपुर अनुमानित किया जाता है जो मत्स्य नरेशों की राजधानी था और जहा पाडवों ने द्रौपदी के साथ अज्ञातवास का तेरहवां वर्ष व्यतीत किया था।

अजमेर मे पुष्कर नामक सुप्रसिद्ध तीर्थ-स्थल के बारे मे भी यह जन-धारणा लोक प्रिय है कि ब्रह्मा ने सृष्टि-रचना के बाद इस स्थल को यज्ञ करने के लिये चुना था। जो भी हो, इतना सुनिश्चित है कि इस प्रदेश की पौराणिक पृष्ठ भूमि बड़ी समृद्ध रही है।

जहां तक इतिहास का सम्बन्ध है, यहां के रण-बांकुरों की रक्त रंजित गौरव-गाथायें भारतीय इतिहास मे स्वर्णाक्षरो मे लिखी गई है। राणा सांगा, महाराणा प्रताप, जयमल-पत्ता और राठौड़ दुर्गादास जैसे वीर, हाडी रानी और कर्णावती सी

वीरांगनायें, भामाशाह से त्यागी और महारानी पद्मिनी सी रूपसियां अपने उदात्त मानवीय गुणों के लिए आदर्श एवं अनुकरणीय चरित्र बन गये है। भक्ति की भाव-धारा भी यहां अबाधगति से प्रवाहित हुई है। दादू और सुन्दर दास की निर्गुण वाणी ने यहां की धरती को निराकार ब्रह्म के अस्तित्व का संदेश सुनाया है, तो दर्द दीवानी मीरा ने यहां के कण-कण को कृष्ण की रूप-माधुरी मे अवगाहन कराया है। काव्य और कला के क्षेत्र मे भी इस प्रदेश का अतीत अत्यन्त गौरवशाली रहा है। हिन्दी साहित्य के वीर गाथा काल की शीर्षस्थ रचनायें "पृथ्वीराज-रासो" "हमीर रासो" "खुमाण रासो" और "बीसलदेव रासो" इसी प्रदेश मे लिखी गई। शृंगार रस के सुप्रसिद्ध कवि बिहारी ने अपनी 'बिहारी-सतसई' और महाकवि पद्माकर ने 'जगत-विनोद' की रचना यही के राज-दरबारों में रह कर की। संस्कृत भाषा में "शिशुपाल वध" के रचयिता महा कवि माघ और "ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त" नामक ज्योतिष-ग्रन्थ के लेखक ब्रह्मगुप्त की प्रतिभा भी इसी वरद् भूमि की गोद में पल्लवित और पुष्पित हुई।

संगीत के क्षेत्र मे तो राजस्थान ने जो सेवायें की है, वे अतुलनीय है। यहां के अनेक शासक स्वयं महान् संगीत-विद् थे। उदयपुर के महाराणा कुंभा ने 'संगीत राज' और 'संगीत मीमासा' नामक जिन ग्रन्थों की रचना की, वे आज भी संगीत-मर्मज्ञो द्वारा अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं। जयपुर के कला-रसिक शासक महाराजा प्रतापसिंह ने भी 'संगीत-सार' तथा 'राग-मंजरी' नामक दो ग्रन्थो का प्रस्तुतीकरण किया। बीकानेर के महाराजा अनूपसिंह के राज्याश्रित कवि भावभट्ट ने 'अनूप संगीत-विलास' और 'अनूप-रत्नाकर' ग्रन्थ लिख कर संगीत के विभिन्न पक्षों का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया।

विश्व-विश्रुत संगीतज्ञ स्वामी हरिदास डागर की ध्रुपद शैली को नष्ट होने से बचाने का श्रेय भी राजस्थान के कलाकारों को ही है। ख्याल गायकी के क्षेत्र में सुप्रसिद्ध गुलाम अब्बास, करामतखां, कल्लनखां आदि भी यही के राज्याश्रित कलाकार थे।

स्थापत्य कला के क्षेत्र मे तो राजस्थान ने वह कमाल हासिल किया है, जिसको देख कर फर्गुसन और हावेल जैसे शिल्प-समीक्षकों को दांतों तले अंगुली दबानी पड़ी है। देलवाड़ा स्थित वस्तुपाल और तेजपाल के जैन मन्दिरों का तो संसार मे कोई सानी ही नही। चित्तौड़, रणथम्भौर, और भरतपुर के दुर्ग, जयसलमेर और बीकानेर की हवेलियां, डीग और आमेर के राज-प्रासाद और बाडोली तथा रणकपुर के देवालय उच्चकोटि की स्थापत्य और मूर्ति-कला के उज्ज्वल उदाहरण हैं।

चित्र-कला के क्षेत्र में भी राजस्थान ने असाधारण ख्याति अर्जित की है। यहां की राजपूत क़लम अपनी कमनीयता एवं सुषमा के लिए सुविदित है। राजस्थानी चित्र-कला की किशनगढ़ तथा बूंदी शैली तो अपनी मौलिकता एवं भाव-व्यंजना के लिए

कला-पारखियों की सराहना की विशिष्ट अधिकारिणी रही है। यहा की पुरानी हवेलियों मे बने भित्ति चित्र यहा के लोगो की कला-प्रियता का आज भी स्पष्ट उद्घोष करते है। इस प्रकार राजस्थान सांस्कृतिक दृष्टि से एक अत्यन्त समृद्ध प्रदेश है।

राजस्थान का स्वरूप-विकास

किन्तु आज हम जिस भूभाग को राजस्थान के नाम से जानते है, उसने अंग्रेजी शासन से पूर्व कभी भी एक राजनैतिक इकाई के रूप मे अपना अस्तित्व ग्रहण नही किया था।

इस प्रदेश के भिन्न-भिन्न भाग भिन्न-भिन्न काल और परिस्थितियों मे भिन्न-भिन्न नामो से जाने जाते थे। महाभारत काल मे इस प्रदेश का बीकानेर क्षेत्र जो उस समय जाँगल की संज्ञा से अभिहित किया जाता था, कौरवो के पैतृक राज्य का ही एक अंग था। इसी प्रकार विराट नगरी जिसे आजकल बैराठ कहा जाता है, मत्स्य प्रदेश के शासक राजा विराट के अधिकार मे थी। एक ऐतिहासिक प्रवाद के अनुसार एक बार कौरवो के भड़काने पर त्रिगर्त (कांगड़ा-पंजाब) के राजा सुशर्मा ने विराट नरेश के गोधन का अपहरण कर लिया और जब विराट नरेश अपने गोधन को मुक्त कराने गये तो स्वयं ही वन्दी बना लिए गये। बाद मे कौरवों ने राजा विराट पर आक्रमण कर दिया, किन्तु अर्जुन की सहायता से कौरव हार गये और विराटाधीश की विजय हुई। राजस्थान के किसी राजा की विजय का यह पहला ऐतिहासिक उदाहरण है। इस घटना के बाद जब पाडवो ने चक्रवर्ती साम्राज्य की स्थापना की तो नकुल ने मरुभूमि और मध्यमिका का इलाका विजय किया तथा पुष्कर क्षेत्र के लोगों को अधीनस्थ किया। सहदेव ने मत्स्य तथा अवन्ति के राजाओ से अपनी अधीनता स्वीकार कराई और उन्हें कर देने के लिए विवश किया। इस प्रकार लगभग सारा राजस्थान पाँडवो के चक्रवर्ती साम्राज्य मे सम्मिलित था।

महाभारत काल के पश्चात् सिकन्दर के आक्रमण तक जिस प्रकार हिन्दुस्तान का कोई इतिहास उपलब्ध नही होता है, ठीक उसी प्रकार राजस्थान का भी कोई इतिहास उपलब्ध नही होता। सिकन्दर के आक्रमण के परिणाम स्वरूप पंजाब की अनेक जातियो ने राजस्थान मे आकर शरण ली। राजस्थान मे स्वतन्त्रता प्रेमी लोगो को शरण देने की परम्परा बहुत ही विशद रही है। शिवि लोगो ने तो मेवाड़ मे चित्तौड़ के निकट गिरी मे अपने जनपद की राजधानी स्थापित की थी और मालवा के लोग भी जयपुर राज्य के दक्षिणी पूर्वी भाग मे बागरछल नामक स्थान पर आकर रहे थे। इन स्थानो से उनके सिक्के भी प्राप्त हुए है। सिकन्दर के आक्रमण के पश्चात् ये लोग राजस्थान मे किस वक्त आये इसका तो कोई ठीक समय निश्चित नही है किन्तु इतना सुनिश्चित है कि सिकन्दर के बाद ये समस्त गणराज्य तथा सम्पूर्ण राजस्थान चन्द्रगुप्त

मौर्य के अधीनस्थ हो गया था क्योंकि उसका राज्य काबुल से लेकर सुदूर दक्षिण में मैसूर तथा हिरात से लेकर ठेठ मगध तक था। जयपुर डिविजन के बैराठ नामक कस्बे मे अशोक का एक छोटा शिला लेख भी मिला है। वृहद्रथ को मार कर पुष्पमित्र शुंग द्वारा मौर्य साम्राज्य पर आधिपत्य करने के बाद भी मौर्यो का राज्य आठवी शताब्दी तक मारवाड़ तथा मेवाड़ मे कही कहीं था। शुंगों के काल में बल्ख के यूनानी शासक ने राजस्थान पर आक्रमण कर दिया और मध्यमिका पर, जिसे आजकल नगरी के नाम पुकारते हैं, घेरा डाल दिया किन्तु शुंगो से हार मान कर उसे सिंध और सौराष्ट्र की तरफ हट जाना पड़ा।

यूनानियों के पश्चात् शक, कुशाण और हूण लोगों ने एक के बाद एक भारत को आक्रान्त किया। शक लोग स्वतन्त्र राजाओ के रूप मे तो पंजाब तक आकर रह गये परन्तु कुशाणो के क्षत्रपाल के रूप में वे पूर्व में मथुरा तक तथा दक्षिण मे उज्जैन तक पहुंच गये। इस प्रकार शक संवत् के आरम्भ तक करीब ४६ वर्ष तक राजस्थान पर कुशाणों का राज्य रहा। इसके पश्चात् राजस्थान, उज्जैन और कच्छ पर शक क्षत्रप नहपाण ने स्वतन्त्र होकर महाक्षत्रप की उपाधि धारण कर राज्य करना प्रारम्भ किया। उसके दामाद उशबदान ने पुष्कर मे एक गांव भी दान किया था। इसके पश्चात् महाक्षत्रप नहपाण दक्षिण के सातवाहन वंश से हार गया किन्तु आगे चल कर रुद्रदामा नाम के दूसरे महाक्षत्रप ने उसके राज्य को पुनः शकों के अधीनस्थ कर लिया और सीमा का विस्तार ठेठ नासिक तक कर लिया व ३९३ ई० तक शकों का राज्य इस प्रदेश पर रहा। कुशाण तथा शक ये दोनों ही आर्य जाति के लोग थे और शिव के अत्यन्त भक्त थे। हां, कनिष्क बाद में बौद्ध अवश्य हो गया था किन्तु उसके सिक्कों पर शिव मूर्ति का अंकन इस बात का द्योतक है कि उसकी आस्था भी शिव में अवश्य रही होगी।

समुद्रगुप्त महा प्रतापी राजा हुआ था। उसने राजस्थान के पूर्वी भाग मे रहने वाली जातियों को कर देने के लिए विवश कर दिया था। सम्पूर्ण राजस्थान पर गुप्तों का आधिपत्य चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के जमाने में ही हुआ। विक्रमादित्य ने शको के आखिरी महाक्षत्रप रुद्रसिंह को मार कर सारा पश्चिमी हिन्दुस्तान अपने अधिकार में कर लिया और उज्जैन को अपनी दूसरी राजधानी बनाई। ४९९ ई० तक गुप्त राजा राजस्थान पर राज्य करते रहे और उसके बाद हूणो के प्रभाव का विस्तार होने लगा।

हूणों मे तोरमाण महाप्रतापी राजा हुआ। उसने गान्धार, पंजाब, तथा कश्मीर से आगे बढ़ कर गुजरात, काठियावाड, राजपूताना तथा मालवा पर अधिकार कर लिया। ५८९ ई० तक हूण लोग राजस्थान पर राज्य करते रहे। ये लोग आर्य जाति के थे, तथा शिव भक्त थे। तोरमाण के पुत्र मिहिरकुल का बनाया हुआ शिव मन्दिर उदयपुर डिवीजन स्थित वाडोली नामक स्थान पर आज भी मौजूद है। मन्द-

सौर के राजा यशोधर्मन ने तोरमाण के बेटे मिहिरकुल को पश्चिमी हिन्दुस्तान से मार कर भगा दिया और उसके बाद पूर्वी राजस्थान तथा अरावली के निकट पश्चिमी भागो पर गुर्जरो का राज्य हो गया। गुर्जर लोग लगभग ७० वर्ष तक राजस्थान पर राज्य करते रहे। उनकी राजधानी मीनभाल थी, जो आजकल जोधपुर डिवीजन के जालौर जिले का एक गाव है। सन् ६०० ई० के आस पास गुर्जरो का राज्य हर्षवर्द्धन के पिता प्रभाकरवर्द्धन के द्वारा उजाड़ दिया गया। केवल उनकी कुछ जागीरें अलवर जिले मे रह गईं। शेष इलाके हर्षवर्द्धन के अधीनस्थ प्राचीन क्षत्रियो के हाथ मे चले गये। जाँगल प्रदेश को राजधानी नागौर मे असल मे नागवंशियों का आधिपत्य था किन्तु बाद मे वह नागो के हाथ मे चला गया और उन्होने अपना कब्जा दक्षिण मे मंडौर तक बढ़ा लिया। मौर्य वंशी लोग चित्तौड़ से मारवाड़ के रेगिस्तान को पार करते हुए सिन्ध तक पहुंच गए। गुर्जरो की राजधानी मीनभाल तथा उसके निकटवर्ती क्षेत्रो पर चावडो का राज्य हो गया। अरावली के दक्षिण मे आकर गुहिल लोग बस गए और उन्होने भीलो को प्रसन्न कर भीली इलाके का शासन हाथ मे ले लिया। कोटा डिवीजन का प्रदेश आगे पीछे मध्य भारत के नागवंशियो के हाथ में चला गया। इस प्रकार हर्षवर्द्धन के काल मे अर्द्ध स्वतन्त्र ये स्वतन्त्र राज्य फैले रहे। हर्षवर्द्धन के देहान्त के पश्चात् कन्नौज के साम्राज्य मे अराजकता फैल गई और मीनभाल के रघुवंशी परिहार राजा नाग भट्ट ने सब पर आधिपत्य कर लिया। वह मीनभाल को अपनी राजधानी बना कर राज्य करने लगा और उसने अपने युग मे सिन्ध के मुसलमानो को भी परास्त किया। इसी नागभट्ट के वंश मे एक नागभट्ट और हुआ जिसे नाहडराव भी कहा जाता है। उसने कन्नोज के साम्राज्य पर स्वामित्व प्राप्त कर लिया। उसके अधीनस्थ आन्ध्र, सैधव, विदर्भ कलिग, बंग, मालव, किरात, तुरुष्क, वस्त और मत्स्य इत्यादि प्रदेश थे। इस तरह सारा उत्तरी भारत उसके अधीन हो गया। जब तक परिहारो का प्रभाव रहा तब तक मुसलमान अरब लोग सिन्ध और मुल्तान से एक इंच भी आगे न बढ़ सके, किन्तु इन लोगो ने अरब लोगो को कभी खदेड़ कर नही भगाया क्योकि यह धर्म भीरु थे। जब कभी भी मुसलमान अरबो को भगाने की बात की जाती, वे लोग मुल्तान के सूर्य मन्दिर मे घुस आने की धमकी देते और ये लोग सूर्यवंशी होने के कारण अगाध श्रृद्धा रखते थे। इसलिए उसकी पवित्रता को सुरक्षित रखने के लिए इनको भी अपने मन पर काबू रखना पडता। इधर परिहार भी किसी विदेशी हमले का डर नही होने के कारण शिथिल हो गये और यह शिथिलता इस हद तक बढ़ गई कि इस राज्य को कायम होने के २०० वर्ष बाद सन् १०१८ मे महमूद गजनवी इसे रौंदता हुआ आगे निकल गया। महमूद गजनवी ने परिहारो की भूमि मारवाड़ में होकर सोमनाथ पर आक्रमण कर दिया, और परिहार लोग उसे आगे बढ़ने से नही रोक सके।

महमूद गजनवी के आक्रमण से अन्तिम हिन्दू साम्राज्य समाप्त हो गया और

उसके ध्वंसावशेषो पर कई छोटे छोटे राज्य स्थापित हो गए। राजस्थान के उत्तर मे नागौर से दिल्ली तक चौहानों का राज्य हो गया। इन लोगो ने अपनी राजधानी नागौर से हटा कर साँभर बना ली और बाद मे राज्य के विस्तार के साथ अजमेर को अपनी राजधानी बनाली। मारवाड़ के मध्य भाग पर परमारो का राज्य हो गया। मारवाड़ के दक्षिण पश्चिम मे सांचौर में सोलंकियो का राज्य स्थापित हुआ और अरावली के उत्तर मे चित्तौड़ तक अब गहलोतों का प्रभाव प्रबल हो गया। ये सीमाये थोड़ी बहुत बदलती अवश्य रही किन्तु जब मुहम्मद गौरी ने हिन्दुस्तान पर आक्रमण किया उस समय हिन्दुस्तान में अजमेर का चौहान राजा पृथ्वीराज सबका शिरमौर था। उसने आस पास के राजाओ को एकत्रित कर तुर्को का मुकाबला किया। तुर्क लोग हार कर भाग गए किन्तु पृथ्वीराज ने राजपूती शान और आन के अनुसार भगौड़े लोगो का पीछा करना उचित नही समझा। यदि वह ऐसा कर सकता तो मुहम्मद गौरी का खात्मा उसी आक्रमण से हो जाता। उसकी इस भूल का परिणाम यह हुआ कि दूसरे आक्रमण में पृथ्वीराज हार गया।

गुलामवंश के सुल्तान अल्तमश ने चौहानो को आखिरी बार हरा कर अजमेर में तुर्कों का राज्य स्थापित कर लिया। यहा एक बात उल्लेखनीय है कि तेरहवी शताब्दी मे तुर्को का राज्य उत्तर भारत में स्थापित हो जाने से कई राजपूत राजाओं ने राजस्थान मे शरण ली और वे लोग अरावली के पूर्व पश्चिम और उत्तर दक्षिण मे बस गए। ठीक इसी प्रकार ९०० वर्ष पहले भी सिकन्दर के आक्रमण के समय अनेक जातियो ने राजस्थान में आकर आश्रय ग्रहण किया था। कछावा लोग ग्वालियर नगर से पश्चिम मे हट कर जयपुर मे आ गये। राठौड़ सामन्त बदायूं छोड़ कर मारवाड़ मे आ बसे। चौहान लोग अजमेर छोड़ कर मारवाड़ के दक्षिण पश्चिम मे सिरोही, तथा दक्षिण पूर्व में बूंदी मे आकर बस गए। भाटी लोग भटिंडा तथा भटनेर छोड़ कर एक दो सदी मे जैसलमेर आकर जम गए। इस प्रकार पुराने राजाओं और उन राजाओं के पुत्रों की अन्तिम शरणस्थली होने के कारण राजस्थान मे आर्यो की जनजातियाँ तथा उनके तौर तरीके आज तक उपलब्ध होते है। मालवा तथा गुजरात का समृद्ध प्रदेश तो तुर्कों के हाथ मे चला गया किन्तु राजस्थान की रेगिस्तानी तथा ऊबड़-खाबड़ भूमि राजपूतों के स्वामित्व मे ही रही। आगे चल कर अलाउद्दीन खिलजी ने राजस्थान को एक बार फिर झिंझोड़ा। उसने रणथम्भौर जालौर तथा नागौर मे चौहानो को और चित्तौड़ मे गहलोतो को हराया, किन्तु अलाउद्दीन के देहावसान के तुरन्त बाद ही राजपूत पुनः स्वतन्त्र हो गए। मेवाड़ के शिशोदियाओ ने गुजरात और मालवा के उन सूबेदारो को जो स्वतन्त्र होकर बादशाह बन गए थे, कई बार हराया। राणा कुम्भा ने तो मालवा पर विजय प्राप्त कर वहाँ के बादशाह को बंदी बना लिया था। चित्तौड़ का विजय स्तम्भ इस घटना का आज भी साक्षी है, किन्तु इन लोगों में महत्वाकाक्षा और कूटनीतिज्ञता का अभाव होने के कारण वे कोई सुदृढ़ साम्राज्य की स्थापना नही कर सके।

गुहलोतो की स्थिति सन् १५२६ ई० तक काफी मजबूत हो गई। जिस वक्त बाबर ने हिन्दुस्तान पर हमला किया, उस वक्त उसे भी भारत को विजय करने के लिए भारत के सबसे बड़े राजा चित्तौड़ के महाराणा संग्रामसिंह से लोहा लेना पड़ा। राणा साँगा हार अवश्य गए किन्तु फिर भी बाबर ने राजस्थान मे कदम नही रखा; क्योकि उसे राजपूतो के शौर्य का परिचय मिल चुका था। अब राजस्थान का इलाका पूरी तरह बट गया था। जैसलमेर मे भाटी, बीकानेर जोधपुर मे राठौड, अरावली के दक्षिणी पूर्वी भाग मे गुहलोत और बूंदी-सिरोही मे चौहान तथा जयपुर मे कछावो की सत्ता स्थापित हो चुकी थी। बाबर के बेटे हुमायूं को परास्त करने के बाद शेरशाह ने मारवाड़ के राजा मालदेव पर चढ़ाई की। मालदेव बड़ा पराक्रमी शासक था। उसका दबदबा उत्तरी गुजरात से लेकर उत्तरी राजस्थान तक था। शेरशाह किसी तरह मालदेव को परास्त तो कर सका किन्तु उसके मुंह से यह बात अवश्य निकली कि मुट्ठी भर बाजरे के लिए हिन्दुस्तान का राज्य खो बैठता। शेरशाह से त्रस्त बाबर का बेटा हुमायूं राजस्थान मे शरण लेने आया किन्तु उसके साथियो द्वारा मारवाड़ मे कुछ बैलों का कत्ल किये जाने के कारण मारवाड़ के राजा मालदेव ने शरण देने से इन्कार कर दिया और हुमायू सिन्ध मे होकर फारस की तरफ चला गया। हुमायूं का बेटा अकबर बडा प्रबल बादशाह हुआ और उसने राजस्थान के सब राजाओ को अपना सामन्त बना लिया। मारवाड के राजा राव चन्द्रसेन ने जब सामन्त बनने के बारे मे अपनी अस्वीकृति दी तो अकबर ने उसके भाई राव उदयसिंह को राजा बना दिया और चन्द्रसेन को पहाडो की शरण लेनी पड़ी। चित्तौड़ के राणा प्रताप ने भी अकबर की अधीनता स्वीकार करने से इन्कार किया और मृत्यु पर्यन्त उसने अकबर की अधीनता स्वीकार नही की। हल्दी घाटी के युद्ध मे राणा प्रताप की हार हुई और उसे भी चित्तौड़ छोड कर चावंड मे शरण लेनी पड़ी। अकबर ने राजपूत राजाओं पर निगरानी रखने के लिए एक सूबेदार की नियुक्ति की। तभी से अजमेर के सूबे की नीव पड़ी। वास्तव मे राजस्थान के एकीकरण की नीव का सूत्रपात इस घटना को माना जा सकता है क्योकि इससे पहले सब राजा लोग अपने को पृथक पृथक रूप से स्वतन्त्र समझते थे किन्तु अब वे एक सूबे मे बंध गये।

राजपूतो द्वारा मुगलों से सम्बन्ध जोड़ने के फलस्वरूप भारत की राजनीति मे एक स्थिरता आई और अमनचैन कायम हुआ। इस युग मे साहित्य, संगीत और ललित कला का बड़ा विकास हुआ। हिन्दू–मुस्लिम संस्कृति के संगम से एक नई हिन्दुस्तानी संस्कृति का उद्भव हुआ। किन्तु औरंगजेब के सिंहासनारुढ़ होते ही सारा मानचित्र बदल गया। उसने हिन्दुस्तानी संस्कृति के स्थान पर मुस्लिम संस्कृति और हिन्दू राज्यो के स्थान पर मुस्लिम राज्य कायम करने की सोची और किसी अंश तक उसे इसमें सफलता भी प्राप्त हुई। मुगलो के बाद मराठो ने राजपूत राजाओ को तंग करना प्रारम्भ किया और उनसे चौथ वसूल की। ये लोग गद्दी के हकदारो मे से किसी

एक का पक्ष लेकर उन्हें आपस में लड़ा देते थे। इस प्रकार परस्पर लड़ने से धीरे-धीरे उनकी शक्ति क्षीण होती गई और आखिरकार भीतरी और बाहरी अशान्ति से तंग आकर राजस्थान के राजाओ ने १९वी शताब्दी मे अंग्रेजों से सन्धि कर ली। यद्यपि संधि-मे प्रदर्शन तो मित्रता का ही किया गया था परन्तु स्पष्ट रूप से वर्चस्व अंग्रेजों का ही था। अंग्रेजो के आगमन के साथ हिन्दुस्तान के इतिहास मे एक नया दौर शुरू हुआ। भारत की संस्कृति पर पश्चिम की छाप लगी। खानपान, रहन-सहन, आचार-व्यवहार, जीवन का कोई भी पक्ष इससे अछूता नही रहा। गुलामी की यह अवस्था भारतवासियों को असह्य हो गई और १८५७ में पहला स्वतन्त्रता संग्राम हुआ और यह संग्राम पूरे सौ वर्ष तक चलता रहा और आखिर १५ अगस्त, १९४७ को वह शुभ दिन आया जब हिन्दुस्तान ने स्वतन्त्रता के स्वर्णोदय के दर्शन किये। स्वतन्त्रता–प्राप्ति के पश्चात् राजस्थान के राजाओ ने धीरे-धीरे भारत सरकार से समझौता कर लिया और अब सार्वभौम शक्ति को प्रजा के हाथो में हस्तान्तरित कर दिया। सबसे पहले अलवर, भरतपुर, धौलपुर, करौली राज्यों का एकीकरण कर १७ मार्च, १९४८ को मत्स्य संघ की स्थापना की गई। इसके बाद कोटा, टोंक, बूंदी, झालावाड़, प्रतापगढ़, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, किशनगढ़, शाहपुरा और कुशलगढ़ का एकीकरण २५ मार्च, १९४८ को हुआ, जिसके फलस्वरूप राजस्थान राज्य की स्थापना हुई। बाद में उदयपुर भी शामिल हो गया। एक वर्ष के बाद इस राज्य में जयपुर, जोधपुर, बीकानेर और जैसलमेर भी सम्मिलित हो गये और ३० मार्च, १९४९ को बृहत्तर राजस्थान का उद्घाटन स्वर्गीय सरदार बल्लभभाई पटेल द्वारा किया गया। इसी वर्ष २५ मई को इसमें मत्स्य संघ को भी सम्मिलित कर लिया गया। १९५० के आरम्भ में सिरोही की छोटी रियासत का विभाजन हुआ। जिसका आधे से अधिक भाग राजस्थान को मिला और माउण्ट आबू सहित आबू का तालुका बम्बई राज्य को प्राप्त हुआ। फिर नवम्बर, १९५६ में राज्यो के पुनर्गठन के साथ राजस्थान को न केवल आबू का तालुका का ही प्राप्त हुआ बल्कि अजमेर का सी श्रेणी राज्य और मध्यभारत का सुनीलटप्पा क्षेत्र भी प्राप्त हो गया। ८५० वर्ग मील का एक छोटा सा क्षेत्र सिरोज मध्यप्रदेश को दे दिया गया और इस प्रकार राजस्थान का वर्त्तमान स्वरूप अस्तित्व में आया।

२

राजस्थानी भाषा की रूपरेखा

राजस्थान जितना महान् प्रान्त है और जितनी अधिक इसकी ख्याति है, उसी के अनुरूप अत्युन्नत और उच्च कोटि का इसका साहित्य भी है। यह साहित्य भी राजस्थानी भाषा मे है जो आर्य भाषा की एक शाखा है। इस समय यह लगभग सारे राजस्थान एवं मालवा प्रान्त की भाषा है और मध्य प्रान्त, सिन्ध तथा पंजाब के भी कुछ भागो मे बोली जाती है। यह करीब दो करोड़ मनुष्यो की मातृभाषा है।

इसके पूर्व मे ब्रजभाषा और बुन्देली, दक्षिण मे बुन्देली, मराठी तथा गुजराती पश्चिम में सिंधी तथा हिन्दकी (लहँदा) और उत्तर में हिन्दकी, पंजाबी और बाँगड़ू भाषाओं का प्रचार है।

भाषा-शास्त्रियो का अनुमान है कि मध्य एशिया को छोड़कर जिस समय हमारे पूर्वपुरुष, प्राचीन आर्य, पंजाब मे आकर बसे थे और उस समय जो भाषा वे बोलते थे उसके एक रूप से वैदिक संस्कृति की उत्पत्ति हुई। इस वैदिक संस्कृति का ही परिवर्तित साहित्यिक रूप पीछे से संस्कृत कहलाया और जन साधारण की भाषाएँ प्राकृत नाम से प्रसिद्ध हुईं। कालक्रमानुसार इन प्राकृतों को विद्वानो ने दो भागों मे विभक्त किया है, पहली प्राकृतें और दूसरी प्राकृतें। पहली प्राकृतो का प्रतिनिधित्व पाली और अर्ध-मागधी करती हैं, जिनमे बौद्ध और जैनों के ग्रन्थ लिखे गये थे। दूसरी प्राकृतो मे शौर-सेनी, मागधी और महाराष्ट्री मुख्य थी। धीरे-धीरे इन प्राकृतों का भी साहित्यिक संस्कार होने लगा और ये भी क्लासिक भाषाएँ बन गईं। परन्तु जन-साधारण की भाषा का जो प्रवाह इनके साथ-साथ अबाध रूप से चल रहा था, वह उत्तरोत्तर बढ़ता गया और कालान्तर मे एक नवीन भाषा के रूप में आविर्भूत होकर अपभ्रंश नाम से प्रसिद्ध हुआ। अपभ्रंश के कई भेद उपभेदो का पता चलता है। प्राकृतचंद्रिका मे इसके सत्ताईस भेद गिनाये गये है--

ब्राचड़ो लाटवैदर्भावुपनागरनागरौ ।
बार्बरावन्त्यपाचालटाक्कमालवकैकयाः ॥
गौडोढ्हैवपाश्चात्यपाण्ड्यकौन्तल सैंहलाः ॥
कालिन्ग्यप्राच्यकर्णाटकाञ्च्चयद्राविड़गौर्जराः ॥
ग्राभीरो मध्यदेशीयः सूक्ष्मभेदव्यवस्थिताः ।
सप्तविंशत्यभ्रंशाः वैतालादिप्रभेदतः ॥

विक्रम की छठी-सातवी शताब्दी से लेकर दसवी-ग्यारहवी शताब्दी तक इन अपभ्रंशो का देश के भिन्न-भिन्न भागो में प्रचार रहा। परन्तु बाद में इनकी भी वही गति हुई जो पूर्वोक्त प्राकृतों की हुई थी। अर्थात् इनमें भी साहित्य-रचना होने लगी और विद्वानो ने इन्हें भी व्याकरण के अस्वाभाविक नियमों से बाँधना शुरू कर दिया जिससे इनके दो रूप हो गये। एक तो वह था जिसमें साहित्य-रचना होती थी और दूसरा वह रूप जिसका सर्वसाधारण में प्रचार था। प्रथम रूप तो व्याकरण के नियमों मे बँधकर स्थिर हो गया, पर दूसरा बराबर विकसित होता रहा और जिस तरह प्राकृतें पहले अपभ्रंशो मे परिवर्तित हो गई थी उसी तरह अपभ्रंश भी आधुनिक आर्य भाषाओं मे रूपान्तरित हो गए।

पूर्व-लिखित सत्ताईस अपभ्रंशों मे से नागर अपभ्रंश का प्रचार-क्षेत्र डा० ग्रियर्सन ने गुजरात–पश्चिमी राजस्थान होना अनुमानित किया है। इसके विपरीत डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने इस क्षेत्र की अपभ्रंश को सौराष्ट्री अपभ्रंश नाम दिया है[1]। परन्तु ये दोनो ही नाम अस्पष्ट है। नागर अपभ्रंश से, यह साफ नही है। और सौराष्ट्री अपभ्रंश नाम कुछ संकीर्ण है। इससे इसका दायरा केवल सौराष्ट्र (काठियावाड़) ही तक सीमित होना सूचित होता है। हमारे खयाल से श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी का रखा हुआ नाम गुर्जरी अपभ्रंश अर्थात् गुर्जर देश की अपभ्रंश अधिक सार्थक है[2]। इस नाम से इसके वास्तविक क्षेत्र का अन्दाजा हो जाता है। क्योकि प्राचीन समय मे गुर्जर देश मे आधुनिक गुजरात और आधुनिक राजस्थान दोनो के कुछ अंश सम्मिलित थे जहाँ यह बोली जाती थी। इसी गुर्जरी अपभ्रंश से राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति हुई जिसका एक रूप आगे जाकर डिंगल नाम से विख्यात हुआ।

---

१. उदयपुर विद्यापीठ के तत्वावधान मे राजस्थानी भाषा पर दिया गया भाषण।

२. अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तैतीसवे अधिवेशन (उदयपुर) का विवरण, पृ० ९।

नीचे के वंश-वृक्ष से उपर्युक्त बातें और भी स्पष्ट हो जायेंगी ।
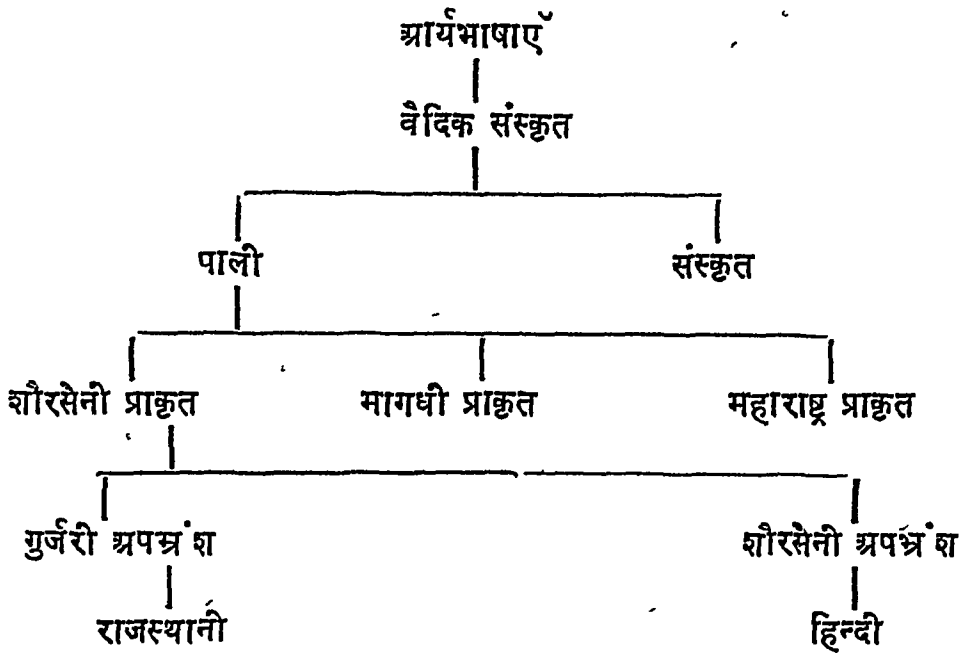
किस निश्चित समय मे राजस्थानी का प्रादुर्भाव हुआ, कहना कठिन है । परन्तु अनुमान होता है कि कोई ग्यारहवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे अपभ्रंश से पृथक् होकर इसने स्वतन्त्र भाषा के रूप मे विकसित होना प्रारंभ किया होगा ।

राजस्थानी भाषा के अन्तर्गत कई बोलिया है जिनमे परस्पर विशेष अंतर नही है । सिर्फ भिन्न-भिन्न प्रदेशो मे बोली जाने के कारण इनके भिन्न-भिन्न नाम पड़ गये है । मुख्य बोलियाँ पाच है—मारवाड़ी, ढूंढाडी, मालवी, मेवाती और वागड़ी ।

मारवाड़ी

मारवाडी का प्राचीन नाम मरुभाषा है । यह जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर तथा सिरोही राज्यो मे प्रचलित है और अजमेर-मेरवाड़ा एवं किशनगढ तथा पालणपुर के शेखावाटी प्रदेश, सिंध प्रान्त के थोड़े से अंश और पंजाब के दक्षिण मे भी बोली जाती है । मारवाड़ी का विशुद्ध रूप जोधपुर और उसके आसपास के स्थानो मे देखने मे आता है । यह एक ओजगुण विशिष्ट भाषा है । इसका साहित्य भी बहुत बढ़ा-चढ़ा है । इसमे संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के शब्द विशेष मिलते है । कुछ अरबी-फ़ारसी के शब्द भी सम्मिलित हो गये है । मारवाड़ी की कुछ अपनी विशेतायें है । जैसे, छंदो मे सोरठा छंद, और रागों मे मॉंड राग जितना अच्छा इस भाषा मे खिलता है भारत की अन्य किसी प्रान्तीय भाषा मे उतना अच्छा नही मिलता । मारवाड़ी गद्य और पद्य दोनो के नमूने देखिए—

(क) एक कंजूस कनै थोड़ो-सो धन हो । उणनै रोजीना इण बात रो डर रैवतो कै संसार रा सगला चोर अर डाकू मारा ही धन माथै निजर गड़ोयोड़ा है । ऐड़ी नही हुवै कै वे कदई इनै लूट ले । वो आपरा धन नै बचावण वास्ते आपरे कनै जो माल-

मत्तो हो सो बेच 'र चक सोना री ईंट मोल लीवी और उणनै घर में एक ओला री जगा गाड़ दी। परंत इत्तो करणा पर भी ऊँरो मन धापियो नहीं जिण सूँ वो रोजीणा उठै जाय 'र देख लेवतो कै कोई ईंट ले'र तो नहीं गयो है। उणनै रोजीना उठै जावतो देख उणरा नौकर ने की भैम हुयो वो मौको देख एक दिन उठै गयो और जमीन नै खोद' र ईंट काड ले गयो। कंजूस आप-री -रोजीना री बिलियां जठै ईंट गाड़ियोड़ी ही उठै गयो तो देखियो कै ईंट तो कोई चोर'र ले गयो। जरा उणनै बड़ो सोच हुवो और गैला ज्यूं जोर'जोर सूँ रोवण लागो। उणनै इण तरह रोवतो-रीखतो सुण कोई पाड़ोसी ऊँरै कनै आयो और दुख रो कारण पूछियो। जद वो पड़ोसी उणनै एक भाटो दे'र कैयो—"भाई! अबै रो मति अर औ भाटो इणी जगां गाड़ दे। अर मन मे समझ ले कै सोना री ईंट ही गड़ियोड़ी है। क्यूँ कै तूँ तो सोना री ईंट ऊं फायदो उठावतो नहीं हो जिण सूँ थारे भावे तो सोना री ईंट अर भाटो सरीसा हीज है।

धन रो उपयोग नहीं करण सूं धन रो हूवणो अर नहीं हूवणों बराबर हीज है[3]।

(ख) दासी, कण विलमायो ए अब तक नही आयौ रावत बारणै
वागाँ मे घूमण गयौ म्हारौ रावतियौ सरदार
वागाँ माँयली कोयल म्हारौ लियौ छै भँवर विलमाय दासी ॥१॥
सैल करण सायबौ गयौ हुय लीली असवार
कै जंगल री मिरगल्याँ म्हारौ लियौ छै स्याम विलमाय दासी ॥२॥
सरवर न्हावण पीव गयौ साथीड़ाँ रे साथ।
कै सरवर की मछलियाँ म्हारौ लियौ छै भंवर विलमाय दासी ॥३॥
चढ़ चढ़ दासी मेड़ियाँ झाँक झरोखाँ माँय
जे तनै दीसै आवतौ म्हारौ मद छकियो स्याम दासी ॥४॥

---

३. एक कंजूस के पास थोड़ा-सा धन था। उसे हमेशा डर लगा रहता था कि संसार भर के सारे चोर और डाकू मेरे ही धन पर नजर लगाये हैं; न मालूम कब वे लूट लेंगे। अपने धन को विपत्ति से बचाने के लिए अपना सब कुछ बेच-बाचकर उसने सोने की एक ईंट खरीदी। उस ईंट को उसने घर के एक गुप्त स्थान मे गाड़ रखा। परन्तु इतने पर भी सन्तुष्ट न होकर वह रोज उस स्थान पर जाकर देखता कि कोई सोने की ईंट को चुरा तो नहीं ले गया। उसको इस प्रकार रोज-रोज एक निर्दिष्ट स्थान पर जाते देखकर उसके एक नौकर को कुछ संदेह हुआ। वह अवसर पाकर एक रोज उसी स्थान पर गया और खोद कर सोने की ईंट निकाल ले गया। कंजूस अपने नियमित समय पर जब उस स्थान पर पहुंचा जहा ईंट छिपी हुई थी तो देखा कि ईंट को कोई चुरा ले गया है। तब रंज के मारे पागल-सा होकर वह बड़े जोर-जोर से रोने चिल्लाने लगा। उसका यह रोना-चिल्लाना सुनकर एक पड़ोसी उसके पास आया और

लीलो घोड़ी हाँसली अलबेलो असवार
कड्याँ कटारी वाँकड़ी सोरठड़ो तरवार दासी[४] ॥५॥

मारवाड़ी की एक उपबोली मेवाड़ी है, जो मेवाड़ राज्य के दक्षिण-पूर्वी भाग को छोड़कर सारे मेवाड़ राज्य और उसके निकटवर्ती प्रदेशो के कुछ भागों मे बोली जाती है। मेवाड़ी का विशुद्ध रूप मेवाड़ के गाँवो मे देखने मे आता है जहां यह अपने असली रूप मे प्रचलित है। शहरो मे इस पर हिन्दी-उर्दू का रंग चढ़ गया है जिसकी वजह से यह बहुत कर्णकटु और अटपटी लगती है। मेवाड़ी मे साहित्य भी है और साहित्यिक परम्पराएं भी बहुत पुरानी हैं। चित्तौड़गढ़ के कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति में लिखा है कि महाराणा कुम्भ (सं० १४९०-१५२५) ने चार नाटक बनाये जिनमे मेवाड़ी का भी प्रयोग किया गया था[५]। राजस्थानी की बोली मे साहित्य निर्माण का यह सबसे पहिला ऐतिहासिक उल्लेख है। मेवाड़ी का नमूना निम्न है--

एक मूंजी तीरे थोडोक धन हो। वणी ने हमेसाँ भो लाग्यो रैतो के दुनियाँ मातर रा चोर और धाड़ेती म्हारा हीज धन ऊपर आँख लगायाँ है। नी जाणे कदी वी लूटी लेला। वणी आपणा धन ने संकट ऊं बचावा रै वास्ते आपणो हंगलोई वेच-खोचने होना री एक ईट मोले लीदी। वणी मूंजी घर मे एक छाने री ठौड़े गाड़ राखी। पण अतरा ऊं ज सबर नी राख ने वो रोज वणी ठकाणो जाइने देखतो के कोई होना री ईट ने चोरीने तो नी ले गियो है। वणी ने अणी तरेऊं दन परत एक ठावी जगा जातो देख ने वंडा एक चाकर ने कईक भैम पड्यो। वो मौको देखने एक

उसके दुःख का कारण पूछने लगा। अंत मे उसने कंजूस को पत्थर का एक टुकड़ा देकर कहा--"भाई अब और रोओ-चिल्लाओ मत; यह पत्थर का टुकड़ा इसी जगह गाड़ दो और मन मे यह समझ लो कि वह तुम्हारी सोने की ईट ही गड़ी है। क्योकि जब तुमने निश्चय कर लिया है कि उससे कोई लाभ न उठाओगे तब तुम्हारे लिए जैसी सोने की ईट है वैसा ही पत्थर का टुकड़ा।"।

धन का उपयोग न करने से धन का होना और न होना एक-सा है।

४. कण=किसी ने। रावत=बहादुर (पति)। मांयली=भीतर को। भंवर=पति। विलमायौ=रिझा लिया। सैर=सैर। करण=करने को। सायवौ=पति। लीली=सफेद रंग की (घोडी)। मिरगल्यां=पक्षी। स्याम=पति। न्हावण=स्नान करने को। हांसली=हीसने वाली। कड्या कटारी बांकड़ी सोरठड़ी तरवार=कमर मे बाकी कटारी और सोरठ देश की बनी तलवार बंधी है।

५. येनाकारि मुरारिसंगतिरस प्रस्यन्दिनी नन्दिनी
वृत्तिव्याकृतिचातुरीभिरतुला श्रीगीतगोविंदके !
श्रीकर्णाटिकमेदपाटसुमहाराष्ट्रादिके योदय---
वाणी गंफमयं चतुष्टमयं सन्नाटकानां व्यधात् ॥१५८॥

दन वणी जगा गियो और खोदनै होना री ईंट ले ग्यो। मूंजी आपणै रोजीना री वेलाँ जदी वठै पूगौ जठै ईंट गड़ी थकी ही तो देख्यौ कै ईंट नै कोई चोरी ले गियो है। तो देख रौ मार्‌यौ वैड़्‌या ज्यूं व्हे नै वो घणा जोर-जोर ऊं रोवा-रीकवा लागो। वंडो यो रोवणों हामल नै एक पाड़ोसी वणी तीरै आयो और वणी रा दखरी वजै पूछवा लागौ। आखर में वणी मूंजी नै भाटा रौ बटको देनै कियो—"भाई! अबे रोवे-रीके मती यो भाटा रौ बटको वणी ठकाणै गाड़ दे और मनमें समझ लै कै वा थारी होना री ईंट होज गड़ी है। क्यूं कै जदी थे धार लीदी है कै वणी ऊं कई फायदो नी उठावेला तो थारै वात्तै जसी होना री ईंट है वस्यो ही भाटा रौ बटको।"

धन नै काम में नी लावा ऊं धन रौ व्हैणो और नी व्हैणो बरोबर है।

ढूंढाड़ी

ढूंढाड़ी जयपुर राज्य के शेखावाटी प्रदेश को छोड़ कर सारे जयपुर राज्य, लावा, किशनगढ़-टोंक के अधिकांश और अजमेर-मेरवाड़े के उत्तर-पूर्वी भाग मे बोली जाती है। इस पर गुजराती और मारवाड़ी दोनों का प्रभाव समान रूप से पाया जाता है। साहित्य की भाषा मे ब्रजभाषा की भी कुछ विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती है। ढूंढाड़ी में प्रचुर साहित्य है। संत दादू और उनके शिष्य-प्रशिष्यों की रचनाएँ इसी भाषा मे है। यह साहित्य गद्य और पद्य दोनों से मिलता है। ईसाई धर्म-प्रचारकों ने भी बाइबिल आदि अपने धर्म-ग्रन्थों के अनुवाद इस भाषा मे कर इसकी संवृद्धि की है। नमूने—

(क) एक मूंजी कनै थोड़ो-सो धन छो। ऊंनै हर भगत यो ही डर लग्यो रहै छो क दुनियां भर का सगला चोर-धाड़ेती म्हारा ही धन पर आँख गाड़ मेली छै। काइ ठीक कद आ'र लूट लेला। आपंका धन नै ईं आफत सै बचाबा कै ताईं वो एक उपाय कर्‌यो। आप को सारो टट्‌ठवारो बेचकर वो एक सोना की ईंट मोल ली। अर ऊंनै आपकी जगा मे एक ओला मे राख दी। पण ईं सैंभी ऊंको मन भर्‌यो कोनै। वो रोजीना उट्‌ठे जा'र देख्यातो क सोना की ईंट नै कोइ चोर'रतो न लेगो। ऊंनै रोजीना एक ही जगां जातो देखबासैं ऊंका नौकर न बैम होगो। एक दिन वो भी उट्‌ठे ही गयो अर खोद'र सोना की ईंट निकाल लेगो। भगत पर जद मूंजी उट्‌ठे गयो जट्‌ठे ईंट गड़ी छी तो ठीक पड़ीक ईंट नै तो कोई चोर'र लेगो। ईं दुःख को मारत्तो वो गेलो-सो हो'र खूब जोर सैं हाय घोड़ो करबा लाग्यो। ऊं को रोवौ सुण'र एक पाड़ोसी ऊं कनै आयो पाछल दाय एक भाटो मूंजी नै दे'र वो वोल्यो—"दादा। अब रोवै तो मतना ईं भाटा का टुकड़ा नै ईं जगा गाड दे और इनैही गडी हुई सोना की ईंट समझ ले। क्यो स जद तू मन मैं धार चठ्यो छै क ऊँसै कोई फायदो नही उठाणो तो थार भावै जसी सोना री ईंट जस्यो ही भाटा को टुकड़ो छै।"

धन नै काम मैं न ल्यावा सैं धन को होवो न होवो इकसार छै।

(ख) पीया म्हाँका जी ! थे चाल्या परदेश घराँ कद आवोला
ओ जी म्हाँका नाव !
गोरी म्हाँ की ए! आवाँ छठड़े मास थाने तो तरसावाँला
ओ ए म्हाँ की नार !
पीया म्हाँका जी ! तरसे लीर बलाय पिहर उठ ज्याँवाला
ओ जी म्हाँका नाव !
गोरी म्हाँ की ए ! पीहरिया को लोग मसकरी गालो छै
ओ ए म्हाँ की नार !
पीया म्हाँका जी ! नीची करल्याँ नाड़र काको ताऊ कहल्याँला
ओ जी म्हाँका नाव !
गोरी म्हाँ की ए ! भावज बोलै बोल हियौ भर आवै लो
ओ ए म्हाँकी नार !
पीया म्हाँका जी ! रुणझुण बहल जुपाय सासरियै उठ आवाँला
ओ जी म्हाँका नाव ![६]

ढूँढाड़ी का जो रूप बूंदी कोटे मे प्रचलित है, वह हाडोती नाम से प्रसिद्ध है। इस मे और ढूंढाड़ी मे नाम मात्र का अन्तर है। शब्द-कोष और उच्चारण शैली मे थोडी-सी भिन्नता है। हाड़ोती मे कुछ ऐसे शब्द देखने मे आते है जिनका सम्बन्ध किसी आर्य या सैमेटिक भाषा से स्थिर नही होता। उच्चारण शैली मे कुछ ऐसी विशेषताएं है जो न तो संस्कृत और न अर्बी-फारसी मे पाई जाती हैं। अनुमान होता है कि अतीत मे किसी समय इस भाषा का हूण, गुर्जर अथवा अन्य किसी विदेशी जाति की भाषा से सम्पर्क रहा है और फल स्वरूप उसी के शब्द इसमे मिल गये है। इसमे लिखित साहित्य नहीं है। नमूना—

एक मूंजी कै थोड़ी पूंजी छी। ऊँनै सदा डर लागबो करै छो क संसार भर का मारा चोर अर धाडेती म्हारा ही धन की आडी चोगता-झाँकता रहे छै; न जाणे कद आर वै लूट लैगा। ऊंनै अपणो धन आफत सूं बचावा बेई सूंना की एक ईंट मोल ली। अपणो सब कुछ बेच-खोज'र ऊंनै वा ईंट घर की एक गपताऊ ठोर मे गाड दी। पण अतना पै भी संतोष न पा'र ऊ रोजीना ऊं ठोर पै जा'र देखतो क कोई ऊ सूंना की ईंट नैं चोर'र तो नह ले गियो। ऊंनै अशा रोजीना एक ही ठोर पै जातो देख'र ऊंका एक चाकर कै कुछ बैम पड़ गियो। ऊ डाण देखकर एक दिन ऊंजाग पै 'गियो अर खोद'र सूंना की ईंट नै काड ले गियो। मूंजी जद अपणा ठीक ऊं ही बगत पै' ऊं ठोर पै पूग्यो जठै सोना की ईंट घुसाड राखी छी तो देखी ए ईंट नै कोई

६. नाव=नाह=पति। मसकरी गालौ=मसखरा। नाड़=गर्दन। रुणझुण बहल जुपाय=रुनझुन बजता हुआ रथ जुतवाकर।

घोर'र न ले गियो जद तो चंता की मारी उ गेल्यो सौ हो'र बड़ा जोर सूं रोबा-चल्लावा लाग्यो। ऊंको यो रोबो बरलाबो सुण'र एक पाड़ोसी ऊंके नखे आयो, अर ऊंका दुख के बेई पूछबा लाग्यो। आखिर मे ऊं नेऊं करपण के ताईं एक भाटा को टूकड़ो दे'र की—"भाया! अब ज्यादा रोवे—चल्लावे मत। यो भाटा को टूकड़ो ईं ही ठाम पे गाड़ दे अर मन मे समझ ले क या थारी सूंना की ईंट ही गड री छे। क्यूंक जद तने या ही बच्यार ली छी कऊं सूं कांई फायदो न उठावणो तो थारे मावें जसी सूंना की ईंट ली उसो ही यो भाटा को टुकड़ो।"

धन नै काम में न लेवे तो धन को होबो अर न होबो एक सारखो ही छे।

मालवी

मालवी समस्त मालवा-प्रात की भाषा है और मेवाड़, मध्य-प्रान्त आदि के भी कुछ भागो मे बोली जाती है। अपने सारे क्षेत्र मे इसका प्रायः एक ही रूप देखने मे आता है। इसमें मारवाड़ी और ढूंढाड़ी दोनों की विशेषताएं पाई जाती हैं। कही-कही मराठी का भी प्रभाव झलकता है। यह एक बहुत कर्णमधुर और कोमल भाषा है। विशेष कर स्त्रियो के मुंह से यह बहुत मीठी लगती है। मालवे के राजपूतो में इसका एक विशेष रूप प्रचलित है जो रागड़ी कहलाता है। यह कुछ कर्कश है। मालवी में भी थोड़ा-सा साहित्य है। चन्द्रसखी, नटनागर आदि की रचनाओं में इसका कही-कही अच्छा रूप देखने मे आता है। प्राचीन पट्टों-परवानों मे भी इसके वास्तविक स्वरूप पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। नमूने—

(क) एक मूंजी रे कने थोड़ो माल थो। वणी नै दहाई ओ डर लाग्यो रेतो थो के आखी दुनिया रा चोर ने डाकू म्हाराज धन पर आँख्या लगायाँ थका है; नी मालम कदी आई ने वी लूटी लेगा। वणे आपणा माल मत्ता नै ई कट कट ती बंचा-वाने घर रा सब तागड़ा बेचा-बेची करी ने होना री एक ईंट मोल लीदी। वणी ईंट ने वीए घर री एक छाने री जगा मे गाड़ी राखी। पण अतरा पर भी वीने धीरप नी आई ने रोज वणी जगा पर जाई ने देखतो के कठे होना री वा ईंट तो कोई चोरी ने नीग्यो। वणी ने अणी तरे रोज-रोज एकज जगा पर जातो देखी ने वीरा एक नोकर ने कईक भेम पड्यो। मोको देखी ने ऊ एक दिन वणी जगा ग्यो और होना री ईंट खोदी ने काड़ी ग्यो। मूंजी जदी आपणी बंधी वगत वणी जगा पोच्यो जठे ईंट गड़ी थकी थी तो देख्यो के ईंट ने कोई चोरी ग्यो है। पछे तो दुख रे मारे वेंडो वई ने ऊ घणा जोर-जार ती हागडा पाडी पाड़ी ने रोवा लागो। वीरो रोवणो-रीकणों हुणी ने एक पड़ोसी वो कने आयो ने ईं दुख रो कारण पूछवा लागो। आखर वणे मूंजो ने भाटा रो एक टुकड़ो दई ने कीयो—"ए भई! अबे रो मती। यो भाटा रो एक टुकड़ो वणीज जगा गाडी दे ने मन मे हमजी ले के या थारो होना री ईंट ज गड़ी थकी है। क्यो के जदी थें यो धारी लीदो के वणी ती कई फायदो नी उठावणो तो थारे भावते तो जसी वा होना री ईंट थी वसोज यो भाटो रो टुकड़ो है।"

धन नैं नी वापरे धन रो वेराो नी वेराों बराबर है।
(ख) मिलता जाजो रे मुरारी थां की सूरत ऊपर वारी।
जो थें मारो नाम नही जाराो मारो नाम वृषभानी।
सूरज सामी पोल हमारी माराक चोक निशानी।
वृषभान घर दस दरवाजा नही चोड़े नही छाने।
मारे आंगन पेड़ कदम को ऊपर कनक अटारी।
थें जावो काना धेनु चरावा मै जाऊं जमुना पानी।
थां के मारे प्रीत लगी है सारी दुनिया जानी।
चन्द्रसखी ब्रजलाल कृष्ण छब हरी चरण बलहारी।
ऐसी प्रीत निभाजो काना जेसी दूध मे पानी॥

मेवाती

मेवाती अलवर-भरतपुर राज्य के उत्तर-पश्चिमी भाग और दिल्ली के दक्षिण मे गुड़गांव मे बोली जाती है। इस भाषा-क्षेत्र के उत्तर मे बांगड़ू, पश्चिम मे मारवाड़ी एवं ढूंढाड़ी, दक्षिण मे डांगी और पूर्व मे ब्रजभाषा का प्रचार है। इस पर ब्रजभाषा का प्रभाव बहुत अधिक देखने मे आता है। इसमे भी थोड़ा सा साहित्य है। चरणदासी पंथ के जन्मदाता संत चरणदास और उनकी दो शिष्याओं दयाबाई और सहजोबाई की रचनाएं इसी भाषा मे हैं। परन्तु इस समय वह साहित्य अपने असली रूप मे नही मिलता। मुद्रक-प्रकाशकों ने उसे बहुत भ्रष्ट कर रखा है। नमूने—

(क) एक मांखीचूस के पे कछु माल-मतो हो। वा लू सदां यांई डर बणो रह हो कै सारी दुनियां का चोर और लूटणियाँ मेराई धन की चगेस मे है; कहा थाह जाणे कब लूट लें। या सोच वा ने अपणा माल मता लू बचाण की खातर घर को अट्टस कुट्टस बेच एक सोना की ईंट मोल ली। वा ईंट लू बाने घर का कूणाँ में एक अबीड़ी ठौर मे गाड़ दी। पंण या पै बी वालू थ्यावस नांय आई। वा रोजीना वाई अबीडी ठौर पै जाकै देखो करै हो कै कोई सोना की ईंट लू चोर कै तो ना लेगो है। वा लू या तरै हर हमेस जातो देख वाई का नौकर लू कछु सूबो हुयो। उ टहलिया मौको पा एक दिना हुई रै ठाण पै लूगो। और हूं सु सोना की ईंट खोद अपणी आमेज मै करी। उ मांखीचूस हुंई ठौर पै अपणा लाग्या बंध्या टेम पै पहुचो तो कहा देखै है कै कोई ईंट लू चोर लेगो है। वा को अभसोच कै मारै चित चिल्ला सूं उतर गो। उ भारी जोर जोर सूं बिलख बिलख कै रोण लगो। वा लू फूट फूट कै रोतो सुण पोड़ोसिया नै वा सूं रोण की बात पूछी। अखीर मे वानै वा मांखीचूस लू एक रोड़ो दे कै कही—"भाई! अब रोवै-पुकारै मत या भांटा का रोड़ा लू उई रै ठाण मैं गाड दे और जाण ले कै तेरी सोना की ईंट हुंई गड़ रही है। क्यूंक जब तैने या पुख्ता इरादो कर लियो है कै वा सूं कोई फायदो उठाणो ई नांयतो लू जिसी सोना की ईंट उसो भांटा को रोड़।"

धन को मौजू खरच न करण सूं धन को होणो न होणों बराबर है।

(ख) सुपना मे छल ली बन्दी आधी-सी रात
पिया मेरो चौपड़ को खिलारी रे!
ताडूं तो मरोड़ूं चरखा दे दूँ तो में आग
चरखो मेरो छाती को जलावा! रे
छोटी सी मझोली जा में छोटा छोटा बैल
छोटो सो बलम गढ़ वालो रे!
खेलण लू खिदा मत सासू बणिया की कै लार
बणिया की नै रूकण सूं बैलायो लै।
हाथन मै पछेली तो पै छूड़ी कैसे नाँय
दुनिया तो लू रांडड़ी बतावै रै।
काया पै तो मत कर बन्दी गरब गुमान
गरब ही रब नै गाली रै!
मोडी तो लूटादूं ख्वाजै तेरे दरबार
बिछटो तो मिला दै बिणजारो रै[७]!

वागड़ी

डूंगरपुर और बाँसवाड़ा के सम्मिलित राज्यों का प्राचीन नाम वागड़ है। वहाँ की भाषा वागडी कहलाती है जो मेवाड़ के दक्षिणी भाग एवं सूंथ राज्य के उत्तरी भाग मे भी बोली जाती है।[८] वागड़ी पर गुजराती का प्रभाव बहुत अधिक है। इसमे 'च' और 'छ' का उच्चारण प्रायः 'स', और 'स' का प्रायः 'ह' होता है। इसमे भी कुछ साहित्य है जो अप्रकाशित है। वागड़ी के नमूने--

---

७. आधी-सी रात्रि मे चौपड के खिलाडी मेरे प्रितम ने मुझे स्वप्न में छल लिया। (सपने में मैं अपना चर्खा कातने में व्यस्त थी। उसने छलने मे मेरे प्रीतम का साथ दिया)। हे छाती जलाने वाले चर्खे! मैं क्यों न तुझे तोड-मरोड़कर आग मे दे दूं? प्रियतम सपने मे छोटी-सी मझोली (यान) मे बैठ कर आए। उसके छोटे-छोटे बैल थे और उसको चलाने वाला भी मेरा छोटा-सा बालम था। ऐसे छोटे-से प्रियतम को हे सास! बनिये की लड़की के साथ कभी खेलने को मत भेजना। वह उसे रुकावण देकर बहला लेगी। (सवेरे हाथ मे चूड़ियां न देख सास ने कहा) तेरे हाथों में केवल पछेली (गहना विशेष) ही कैसे रह गई। चूड़ियों का क्या हुआ? चूड़ियों के बिना दुनियाँ तुझे विधवा बताएगी। काया का गर्व मत कर। ईश्वर ने सदा गर्व को गाल दिया है। (स्वप्न मे जिस प्रीतम ने छला था)। हे ख्वाजा साहब! उस बिछुड़े प्रियतम से मिला दे। मैं तेरे दरबार मे अच्छे पशु भेंट चढ़ाऊंगी।

८ डा० ग्रियर्सन ने वागड़ी को भीली नाम दिया है। परन्तु उनका दिया हुआ यह नाम असंगत है। कारण कि भीलो की कोई अलग निश्चित भाषा नहीं है। डूंगर-

(क) एक सामटा नै थोड़ोक धन हेतो। अ ने दाहड़ी ई बीक लागी रेती कै हेती जगत ना हंगरा सोर नै डाकू माराज धन ऊपर नजर राखी रया हे। ने जाएां कारे आवीनै ई लूटी लहें। अ एो आपड़ा धन नै आफत हों बचाववा ना हारू आपड़ो हंगरो वेसो करी नै होनानी एक ईंट वेसाती लीदी। अ एगी ईंट ने अ एो धरनी एक सानी जगा मये खोतरी घाली। अपरा अटलो करवा उपरे राजी ने थई नै ई दाहड़ी अ एगी जगा ऊपर जाईनै देकतो कै कोई होना नी ईंट नै सोरी तो ने लईग्यों हे। अ ने अ मज दाहड़ी-दाहड़ी एकज जगा ऊपर जातो देकीनै ऐने एक नौकर नै कयेंक शक थ्यो। ई मोको देकीनै एक दाड़ो अ एगी जगा ऊपर ग्यो नै खोतरी नै होना नी ईंट काड़ी लई ग्यो। सामटो दाहड़ी ना वजू जारे अ एगी जगा ऊपर ग्यो जहं ईंट हँपाड़ी हती। अ एो ऐयँ जई नै देक्यो कै ईंट नै तो कोईक सोर सोरी लई ग्यो हे। तारे दुकनो मारयो गाडा हरको थई नै खूब जोर थकी रोवा ने डाड़े करवा लाग्यो। अ ने ई रोवो नै ड़ाड़े करवो हामरी नै एक अ नो पाड़ोई अ ने पायें आव्यो नै अ ने दुक नो कारए पूस्योम। आकर ये अ एो सामटा नै एंक पाएा नो बड़को आली ने क्यु कै––"भाई, हवे नके रोवो नै ड़ाड़े नके करो। आ पाएा नो बड़को अ एगीज जगा ऊपर गाड़ी दो नै मन मये हमजी लो के ई तमारी होना नीज ईंट गड़ेली है। केम के तमें नक्की करी लीदो हे के कमे अ एा थकी कयेंए फायदो न उठाव हो तारे तमारा हारू जेवी होना नीईंट हे अ वोज आ पाएा नो बड़को है"।

धन नै ने वेपरावा थकी धन नो हो वो नै ने होवो बराबर ज हे।

(ख) लंका ते गढ सोनुं वापरेयुरे, के आव्यु वागड़िये देसरे।
मारी मारा सुं मारूँ मन रस्युँ रे।
केएो देख्यु ने केएो मूलव्युं रे, केएो खरस्यें दाम रे।
मारी मारा सुं मारूँ मन रस्युँ रे।
जेठे देख्यु ने केएो ससरे मूलव्युं रे, ओजी साहेबे खरस्यं दामरे
मारी मारा सुं मारूँ मन रस्युं रे।
सोकसी नो बेटो मारो भाइलो रे ए वीरा मनेसोनुं तोली आलरे
मीरा मारा सुं मारूँ मन रस्युं रे।
सोनीड़ा रो बेटो मारो याइलो, रे ए वीरा मन मारा घड़ी आलरे,
मारी मारा सुं मारूं मन रस्युं रे।
पटुआ रो बेटो मारो भाइलो रे, ए वीरा मने मारा गाँठी आलरे
मारी मारा सुं मारूँ मन रस्युँ रे।

पुर-बांसवाड़ा मे जो भाषा आमतौर से बोली जाती है उसी का व्यवहार वहाँ के भील लोग भी करते है। सिर्फ उच्चारए आदि की थोड़ी-सी भिन्नता के कारए वह एक पृथक् भाषा प्रतीत होती है।

जोसीड़ा नो बेटो मारो भाइलो रे, ए वीरा मने मूरत जोई आलरे
मारी मारा सुं मारू मन रस्यु रे[9]।

लिपि

राजस्थानी लिपि अधिकतर देव नागरी लिपि से मिलती है। कुछ अक्षरों की बनावट में अन्तर अवश्य है पर यह अन्तर भी अब दिन-दिन मिटता जा रहा है।

यह लिपि लकीर खीचकर घसीट रूप में लिखी जाती है। राजकीय अदालतों आदि मे इस लिपि का प्रायः विशुद्ध प्रयोग होता है। परन्तु महाजन लोग अपने बही-खातों में इसका शुद्ध प्रयोग नही करते। उनकी इस अशुद्ध लिपि-शैली का नाम ही जुदा पड़ गया है। इसे महाजनी अथवा बाणियाचटी लिपि कहते हैं। और इसके अक्षर 'मुड़िया' कहलाते हैं। इसमें मात्राएँ नहीं रहती। यह एक तरह शॉर्टहैड का काम देती है।

कहा जाता है कि इन मुड़िया अक्षरों के आविष्कर्ता मुगल सम्राट् अकबर के अर्थ-सचिव राजा टोडरमल थे[10]। ऐसा कहने वाले अपने कथन की पुष्टि में निम्न-लिखित दोहा भी उद्धृत करते हैं जिसे वे खुद टोडरमल का बनाया हुआ बतलाते हैं—

देवनागरी अति कठिन, स्वर व्यंजन व्यवहार।
तातें जग के हित सुगम, मुड़िया कियो प्रचार॥

---

९. मेरा मन माला से लगा हुआ है। अतः इस माला के लिए लंका से वागड़ देश में सोना आया है॥१॥ इस सोने को किसने देखा, किसने मोलाया और किसने दाम खर्चकर ख़रीदा॥२॥ जेठ ने देखा, ससुर ने मोलाया और पति ने दाम खर्चकर खरीदा॥३॥ चौकसी (सोने की परीक्षा करने वाला) का पुत्र मेरा भाई है। अतएव हे भाई! तू मुझे सोना तोल दे॥४॥ सुनार का पुत्र मेरा भाई है! अतः हे भाई! तू मुझे सोना घड़ दे॥५॥ पटुवे का पुत्र मेरा भाई है। अतः हे भाई तू मुझे माला गाँठ दे॥६॥ ज्योतिषी का पुत्र मेरा भाई है। अतः हे भाई! तू मुझे (माला पहिनने का) महूरत देख दे॥७॥

१०. बालचन्द मोदी; देश के इतिहास में मारवाड़ी जाति का स्थान पृ. २३२

३

राजस्थानी भाषा का अध्ययन और विदेशी विद्वान

भाषा और साहित्य तथा इतिहास के विद्यार्थियों द्वारा डिंगल-भाषा के साहित्य का अत्यधिक महत्व अब स्वीकार किया जाने लगा है। डिंगल आधुनिक भारतीय भाषाओ के मध्ययुगीन स्वरूप के साथ अपनी रचनाओ के विस्तार एवं विषयो की विभिन्नता के कारण बडी आसानी से रक्खी जा सकती है। उस समय जब खड़ी बोली का जन्म ही नही हुआ था, डिंगल भाषा ने ही अपने आप मे राजपूत पुरुषों के शौर्य और राजपूत नारियो के सतीत्व-रक्षा के लिए बलिदान की अमर कहानी को उच्चासन दिया। डिंगल, आरम्भिक ब्रज और आरम्भिक अवधि उत्तरी भारत मे पूर्वो पंजाब से पश्चिमी बिहार तक उन्नीसवी शताब्दी तक साहित्यिक अभिव्यक्ति के तीन सर्वाधिक प्रचलित रूप थे। इस प्रकार की महत्वपूर्ण साहित्यिक उपलब्धि वाली भाषा (परिस्थितियो से बाध्य होकर, जिनके सम्बन्ध मे यहा कुछ कहना सम्भव नही है और जो सचमुच विचित्र और व्यंग्यात्मक 'इतिहास की विवशताओ' मे से एक है) पिछडी तीन चार पीढियो मे जहा वह रानी की तरह शासन करती थी अपने ही घर मे पदच्युत होकर एक प्रान्तीय ग्राम्य-भाषा बन गई। किसी समय की महान् और अत्यधिक विकसित भाषा का इस प्रकार का भाग्यपरिवर्तन भारत या संसार के अन्य भागो मे विरल नही है, लेकिन इस भाषा का सौन्दर्य और शक्ति अपने वक्ताओ का हृदयस्पर्श करने के लिए कभी नही मिटा और लोगो ने इस भाषा के माध्यम से अपने हार्दिक भावो को अभिव्यक्त करना कभी नही छोड़ा। इसमे चाहे महान् साहित्य न लिखा गया हो, लेकिन दोहे, गीत और लघु प्रकीरणक काव्यो का समृद्ध साहित्य जो इसमे पहले भी लिखा जाता था और भी बड़े पैमाने पर निरन्तर फलता फूलता रहा। भाषा की उपेक्षा की गई और इसके केवल एक पुराने साहित्यिक रूप का ही चारण व भाट कवियो द्वारा जो पुरानी परम्परा के थे—एक ऐसी परम्परा जो आधुनिक युग मे बड़ी शीघ्रता से ओझल हो रही थी अर्थात् भाटों और चारणों, इतिहासकारो और बन्दीजनो की परम्परा जो

राजाओं और बडे जमीदारो के सामन्ती दरबारों में रहते थे, गहराई से पढ़ा जाता रहा और विकसित होता रहा लेकिन भाषा चालू रही और लोगो की वाणी मे अपने जीवन और विकास को बनाये रक्खा, यद्यपि बाद में यह राजकीय भाषा नहीं रही पर यह मिट नही सकी, वे स्कूल जिनमें इस इलाके के बालकों और युवकों को प्रशासकीय, व्यावसायिक और वैज्ञानिक सेवाओ के लिए शिक्षा दी जाती, उन्हें उर्दू पढ़ाई और फिर हिन्दी। क्योकि पिछली शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे हिन्दी ने उर्दू का स्थान लेना प्रारम्भ कर दिया था, राजस्थान की भाषा में रुचि, पुरानी पीढ़ियो तक ही सीमित रही और नई पीढ़ी जो दूसरे वातावरण मे शिक्षित हुई थी, धीरे-धीरे इस भाषा के ज्ञान और समझ के प्रति सहानुभूति नही रहती थी, पर उसे जीवन के विभिन्न क्षेत्रों मे जिनमें साहित्य भी है, अपने पूर्वजों की उपलब्धियो के प्रति एक गर्व था, पर वह केवल स्वदेशाभिमानी भावना थी जो केवल भावना ही रही। इससे कोई व्यावहारिक वैज्ञानिक कार्य का जो भाषा का व्यक्तित्व महत्व स्थापित कर सके या इसे पुनः साहित्यिक प्रयोग के लिए पुर्नस्थापित करने के प्रयास में सहायता दे सके, कोई परिणाम नही निकला।

इसी बीच हिन्दी अपने महान् सम्मान और उत्तरी भारत की एकता के सूत्र रूप मे प्रसिद्ध होकर, विभिन्न भाषाओं और बोलियों को संयुक्त कर रही थी और पंजाब से पूर्वी बिहार तथा हिमालय की ढलानों से विंध्य की पहाड़ियों तक उत्तरी भारत के लिए एक सामान्य सांस्कृतिक धरातल तैयार करने और प्रशासकीय एकता के लिए उर्दू के परिधान को अपने कन्धों पर धारण कर रही थी। यह स्वाभाविक ही था यह राजस्थानी बोलने वाले लोगो, जिनके राजनीतिक सम्बन्ध और सांस्कृतिक विचार १२वी शताब्दी के बाद पाटण और अहमदाबाद की ओर न झुक कर, यद्यपि राजस्थानी गुजराती की सगी बहन थी, दिल्ली और मथुरा की ओर झुक गये थे, मस्तिष्क पर अपना गहरा प्रभाव डाल रही थी। पिछली शताब्दियों में रेगिस्तान के लोगों पर गंगा के आसपास की भाषा का आरम्भिक प्रभाव था। हम जानते हैं कि किस प्रकार ब्रजभाषा का आरम्भिक रूप राजस्थान में आया, यह रूप केवल गंगा के निकटवासी राजपूतों और अन्य हिन्दू सामन्तों के साथ ही नही आया; बल्कि वैष्णव धर्म की पुनर्जागृति जो मथुरा और वृन्दावन के आसपास १५वी-१७वी शताब्दी में हुई थी, के साथ आया। राजस्थान में यह व्रजभाषा साहित्यिक अपभ्रंश की परम्परा से मिल गई और पिंगल के रूप मे स्थापित हो गई। पिंगल गंगा के ऊपरी भाग में एक साहित्यिक भाषा के रूप में उत्पन्न हुई। यह डिंगल की बहन होने के साथ-साथ उसकी प्रतिद्वन्द्विनी भी थी। डिंगल मारवाड़ी से ही उप्पन्न हुई थी। राजस्थान के लोग एक साथ दो घोड़ो की सवारी करने में निपुण थे। अतः राजस्थानी के साथ-साथ पिछली दो-तीन पीढियों में हिन्दी को भी, शिक्षा, जन-जीवन और गहन साहित्य की भाषा स्वीकार करने में उन्हें कोई अड़चन नही मालूम हुई। हिन्दी को भी वे अपने घरों में बोलते थे और यदा-कदा

काव्य रचना मे उसका उपयोग करते थे, इस प्रकार राजस्थानी केवल घर की ही भाषा और कुछ अंश तक सीमित साहित्य की भाषा के गौण स्थान को पाकर ही संतुष्ट हो गई।

इस प्रकार स्थानीय भाषा का गहन अध्ययन राजस्थान मे शिथिल रहा। लोग हिन्दी मे लीन थे और खड़ी बोली हिन्दी ने भी राजस्थान के आरम्भिक साहित्यिक रचनाओ को अपने उत्तरोत्तर विकसित साम्राज्य मे सम्मिलित कर लिया। यहा तक कि इसने अवधी और ब्रजभाषा तथा भोजपुरी और पहाड़ी बोलियो एवं पंजाबी के आरंभिक साहित्य के उत्तराधिकार भी ले लिए। राजस्थानी और इसके अतीत इतिहास के सम्बन्ध भी हिन्दी की छाया मे विलीन हो गये और राजस्थानी केवल (हिन्दी की बोली) मात्र जानी जाने लगी। इस प्रकार का उल्लेख हिन्दी भाषा मे अब तक लिखे वृहत्तम व्याकरण मे अर्थात पिछली शताब्दी के अन्तिम भाग मे केलॉग (Kellogg) द्वारा लिखे गये व्याकरण मे किया गया।

राजकुमारी सोगई थी और वह नही जगी, लेकिन तब पश्चिम से एक जादूगर—एक नवयुवक विद्वान् जो पश्चिम की मानवता से प्रेरित था, आया। यूनानी सभ्यता ने मानवता को, मनुष्य के रूप मे देखने की एक नवीन दृष्टि प्रदान की थी। इसने सभ्य मनुष्य मे मूल मानवता की भावना अर्थात मूल मानव चरित्र की भावना स्थापित की जिससे प्रत्येक मनुष्य के लिए समस्त विश्व एक परिवार बन गया। सुकरात ने अपने आपको एक विश्व नागरिक घोषित कर दिया था। यूनानियो ने आन्थ्रोपोट्स शब्द का निर्माण किया, जिसका रोम वालो ने लेटिन मे ह्यूमेनिट'ज शब्द मे अनुवाद किया, इसका तात्पर्य है "विश्व मानवता", इसमे मनुष्य की मनुष्य रूप मे गहन रुचि, प्रशंसा और अध्ययन सम्मिलित था। यह मनुष्य द्वारा मनुष्य को समझने के तथ्य का एक नया दृष्टिकोण था, जो पुनर्जागरण के दिनो मे यूनानी साहित्य के अध्ययन के साथ साथ, यूरोप मे पुनर्जीवित किया गया। यह आधुनिक सभ्यता मे समस्त संसार मे एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण बन गया है। चीनी लोग भी बिल्कुल स्वतन्त्रता से मानवता के इसी व्यापक दृष्टिकोण तक पहुंच चुके थे, उदाहरण के लिए चीनी लोगो मे यह कहावत बहुत प्रचलित है, "दस हजार देश समान भावनायें; स्वर्ग के नीचे एक परिवार!" हमारे समय मे भारत मे इसके सबसे अधिक व्याख्याता स्वामी विवेकानन्दजी वेदान्त दर्शन के प्रचारक रहे है। इनके अलावा विश्व कल्पना के एक कवि रवीन्द्र टैगोर और एक दर्शनिक जो मनुष्य की एकता को कवि टैगोर की भाति ही समझता है अर्थात् सर्वपल्ली राधाकृष्णन्। लेकिन मानवता की यह भावना अपने पूर्णरूप से यूरोप से हमे आधुनिक युग मे प्राप्त हुई। सर्वप्रथम यह अंग्रेजी साहित्य के द्वारा हमे मिली। यह मनुष्यता को समझने के कार्य मे आत्मार्पित विद्वानो के उस निस्वार्थी समूह के द्वारा हमे प्राप्त हुई, जो केवल इंगलैड के ही नही थे, अपितु फ्रास,

जर्मनी, इटली और स्केन्डेनेवियन (नार्वे और स्वीडन) देशों के भी थे। रूस और अमेरिका एवं छोटे से देश यूनान के विद्वानो ने वर्तमान मानव की इस कसौटी के साथ भारत मे मनुष्य को उसके जीवन के सभी क्षेत्रों मे समझने और समझाने का कार्य अपने ऊपर लिया।

यूनान द्वारा प्रदत्त महत्वपूर्ण देन की तरह इटली भी अपनी एक देन के द्वारा आधुनिक सभ्यता का एक निर्माता है। यूनान ने चिंतन और सौंदर्य चेतना एवं समस्त जीवन की समस्याओ का गहन ज्ञान प्रदान किया और इटली ने रोम के द्वारा पश्चिमी संसार को शासन और व्यवस्था एवं संगठन और एकीकरण दिया। लेकिन इटली का मस्तिष्क यूनान की आत्मा द्वारा विस्तृत बना दिया गया था। १९ वी शतब्दी के आरम्भ मे जब उसने अपने इतिहास को पुनः ज्ञात करने के मार्ग पर साहसपूर्ण चलना आरम्भ किया तो यूरोप ने भारत द्वारा उसके महान राष्ट्रीय उत्तराधिकार संस्कृत द्वारा दी गई सहायता को उत्सुकता और युगल हस्तों से स्वीकार किया है। अंग्रेज विद्वान सर विलियम जोन्स यूरोपीय विश्व को और १८ वी सदी की विभिन्न भागों से निर्मित संस्कृत के सर्व श्रेष्ठ जानने और प्रकाश में लाने वालों मे से एक था। उसने पश्चिम संसार के समक्ष संस्कृत के अस्तित्व के महान् तथ्य को घोषित किया। यूरोपीय विद्वान इस महान् खोज का उपयोग करने और एक नये विज्ञान अर्थात् तुलनात्मक भाषा शास्त्र का निर्माण करने में सुस्त नही थे। इससे उन्हें अपनी भाषाओं और संस्कृतियो की उत्पत्ति समझने में सहायता मिली। इस क्षेत्र मे कार्य करने वाले प्रसिद्ध व्यक्तियो की सर्व प्रथम टोली जर्मनी ने तैयार की, लेकिन दूसरे देश भी पीछे नही थे, और निश्चय ही न सुस्त ही थे, हम भारत में बॉप और रोजेन, लॉसिन और मैक्समूलर, गोल्डस्टकर और ब्यूलेन, सच्चरादेर और वेबर और तुलनात्मक भारोपीय व्याकरण के प्रसिद्ध विद्वान सिल्चर और ब्रुगमैन के बारे मे सुनते है। हम संस्कृत और भारतीय भाषाओ के अंग्रेज विद्वानों को भी जानते है। जैसे कोलब्रुक और विलसन, कर्नीघम और फ्लीट, ग्रिफिथ और मोनियरविलियम्स और बीम्स और ग्रियर्सन, प्रसिद्ध फ्रेंच विद्वान वार्थ और सेनार्थ, फाऊचर और लेवी भी भारत मे अपरिचित नही हैं। कुछ इटालियन यात्री मध्ययुग से लेकर १८ वी शताब्दी तक भारत मे आये। इनका आना महान् मार्को पोलो से (तेरहवी शताब्दी का अन्तिम चरण) आरम्भ होकर निकोलो कोन्ति, लुदोविको-द-वर्थेमा और निकोलस मानुसी (महत्वपूर्ण ऐतिहासिक कृति मुगलो की कहानियां 'Storia do Mogor' का लेखक) तक चलता रहा और इन्होने एक जिज्ञासु और श्रद्धालु मध्ययुग और १९ वी शताब्दी के यूरोप को भारत के साहस-पूर्ण प्रेम और बर्बर वैभव से परिचय कराया। १८वी शताब्दी मे कोन्सतेनतिनो बेसची (Constaintino Beschi) नामक एक इटालियन पादरी ने ब्राह्मण गुरु की पद्धति स्वीकार की। उसने अपना भारतीय नाम 'वीरम-मुनिवर' रक्खा और तेम्ब्रावेणी

(Tembaveni) अथवा " न मुरझाने वाली माला" नामक एक लम्बी कविता ललित तामिल भाषा मे लिखी जो ईसाइयों के पुराण कहे जा सकने वाले या पौराणिक और निजन्धरी कहानियो पर आधारित है। यह रचना अब तामिल का एक अति उच्च श्रेणी का ग्रन्थ है। बहुत कम भारतीय विद्वानो ने इटली के गोरेसियो (Gorresio) और एस्कोली (Ascoli) नामक दो महान् विद्वानो के बारे मे सुना होगा, जिन्होंने पिछली शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे भारतीय भाषाओं के अध्ययन मे महत्वपूर्ण योग दिया है। अधिकाश भारतीय इस बात से बिल्कुल अपरिचित हैं कि वाल्मीकि की संस्कृत रामायण का प्रथम पूर्ण संस्करण इटालियन टीका सहित एक महान् इटालियन संस्कृत भाषा के विद्वान गैस्पेरे गोरेसियो (Gaspare Gorresio) द्वारा १८४३-१८६७ के बीच इटली में प्रकाशित हुआ था। यह शानदार संस्करण ताइपिन (Typin) से इटली के महान् शासकों मे से एक—कारलो अलबर्टो (Carlo Alberto—Charles Albert) की संरक्षता मे प्रकाशित हुआ था। यह व्यक्ति सारडीनिया (Sardinia) का उस समय राजा था, जबकि इटली ने अपनी पूर्ण राष्ट्रीय-एकता प्राप्त नही की थी और उसका कुछ भाग आस्ट्रिया के अधिकार मे था। इसके थोड़े ही समय बाद रामायण के प्रथम पूर्ण भारतीय संस्करण बम्बई और कलकत्ता से प्रकाशित हुये (कलकत्ते वाला संस्करण १८६९–१८८५ में पं० हेमचन्द्र विद्यारत्न द्वारा रामानुज की व्याख्या सहित प्रकाशित हुआ)। गोरेसियो (Gorresio) के संस्करण और उसके इटालियन अनुवाद (१८४७–१८५८ मे पेरिस से प्रकाशित) ने सर्व प्रथम यूरोप के लोगो को रामायण का परिचय कराया। हिपोलाइट फौचे (Hippolyte Fauche) का फ्रांसीसी अनुवाद (१८५४–१८५८) और राल्फ टी० एच० ग्रिफिथ (Ralph T. H. Griffith) का अंग्रेजी अनुवाद (१८७०–१८७४) बाद मे प्रकाशित हुये। आरंभिक इटालियन विद्वानो के कार्य के सम्बन्ध मे भारत मे इस अज्ञान का एक कारण यह था कि गोरेसियो की कृति इटालियन भाषा के माध्यम से प्रकाशित हुई थी, यद्यपि यही रामायण नागरी के बड़े २ अक्षरों मे बहुत उत्तम रूप मे छपी थी। एफ० एस० एस्कोली (F. S. Ascoli) भारोपीय भाषा शास्त्र के क्षेत्र मे दूसरा महत्वपूर्ण नाम है जिसने आदिम भारोपीय बोली के स्वभाव और विकास के बारे मे कुछ खोजें की और जो काफी महत्वपूर्ण थी, लेकिन इस इटालियन विद्वान के कार्य का परिचय भारत मे व्यापक रूप से नही जाना गया क्योकि पहले तो उसका विषय ही वैज्ञानिक था और दूसरे उसकी रचना इटालियन भाषा मे संसार को प्राप्त हुई जिसका कि भारत मे अध्ययन नही किया जाता था। फिर भी अंग्रेजी के माध्यम से पुराने लैटिन साहित्य और तब बाद के इटालियन साहित्य ने १९ वी शताब्दी के मध्य से भारत के आधुनिक विद्वानो पर प्रभाव डाला। पिछली शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे बंगाल के कवियो मे से एक श्री माइकेल मधुसूदनदत्त थे; जिनकी रचनाओ मे बंगला साहित्य ने अपना प्रान्तीय स्वरूप छोड़ दिया और विश्व के आधुनिक साहित्य का स्थान ग्रहण कर लिया। वे इटालियन भाषा के एक अच्छे

जानकार थे और उन्होंने दांते (Dante) पेत्रार्च (Petrarca) और महान् देश इटली के सम्मान में चतुर्दशपदी (कविता का एक रूप जिसे उन्होंने इटालियन भाषा से बंगला में ग्रहण किया और स्वाभाविक बना दिया) अपनी भाषा बंगला मे लिखी। उन्होने इन कविताओं मे से एक का स्वयं इटालियन भाषा मे अनुवाद किया और दांते की सातवी शताब्दी के आयोजन के अवसर पर उसकी स्मृति में आधुनिक भारत की श्रद्धांजली के रूप मे रोम भेज दिया। इस प्रकार भारतीय इटालियन संस्कृति के एक सूक्ष्म प्रवाह का आदान प्रदान होता रहा जो भारत मे विकसित हुआ और जो निश्चय ही इटालियन विद्वानों की भारतीय भाषाओं की उपलब्धि से पोषित और दृढ़ हुआ।

इसी बीच इटली मे भारतीय भाषाओ का अध्ययन गोरेसियो (Gorresio) से आरंभ होकर अपनी फलदायी परम्परा को चालू रखे रहा और इस समय संस्कृत और अन्य भारतीय भाषाओं के जानने वाले इटालियन विद्वानो का ऐसा समूह है जो प्राचीन भारत के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान बढ़ाने मे उल्लेखनीय योग दे रहा है। कुछ ही समय पूर्व संस्कृत महाभारत के काफी भाग का प्रसिद्ध इटालियन कवि और संस्कृत के विद्वान करबाकर (Kerbaker) द्वारा अनुवाद किया गया जिसमें पूरी कहानी दी गई थी। यह अब इटालियन साहित्य की विशेष संवृद्धि का रूप धारण कर कुका है। मध्य और दूरपूर्व के लिए इटालियन संस्था (Istituto Italiano per il Medio ed Estremo Oriente) द्वारा डाक्टर टुसी (Dr. Ginseppe Tucci) के महत्वपूर्ण निर्देश में अन्य अध्ययन के साथ भारतीय भाषाओं के लिए जो कार्य किया जा रहा है वह वर्तमान प्राच्य ज्ञान की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है।

अब हम उस प्रसिद्ध इटालियन विद्वान का उल्लेख करेगे जिसकी सेवाओं से राजस्थान कभी उऋण नही होगा। यह डा० एल० पी० टैसीटोरी (Dr. L. P. Tessitori) इटली का वह सपूत था जिसमे भारत के प्रति प्यार बढ़ता गया। वह इस देश मे आया, कुछ वर्षों तक यहां रहा और काम किया और तब भारत की मिट्टी मे अपने आपको समर्पित कर दिया। यूरोप के अपने भ्रमण के समय मुझे कई प्रसिद्ध यूरोपियन और ख्याति प्राप्त विद्वानों से व्यक्तिगत रूप मे परिचित होने का सौभाग्य मिला। उनमें इटली के कुछ प्रसिद्ध प्रोफेसर थे। इनमें पदुआ के प्रोफेसर एम्ब्रोजिओ बैलिनी (Prof. Ambrogio Ballini of Padua) रोम के प्रोफेसर कार्लो फोरमिचि (prof. Carlo Formichi of Rome) (प्रोफेसर फोरमिच यह बात याद करके बहुत प्रसन्न होते थे कि मूल लैटिन मे उनका नाम संस्कृत वाल्मीकि के समान था) और वह अद्वितीय विद्वान प्रो० टुस्सी (Prof. Giusppe Tucci) जो स्वयं में तीन अपूर्वता लिए हुये हैं अर्थात, वे भारतीय, चीनी और तिब्बती भाषाओं के गहरे जानकार है। इनके अतिरिक्त उनके कई शिष्य भी प्रसिद्ध विद्वान हैं जो इटली में भारतीय भाषाओं के आलोक को विकीर्ण कर रहे हैं। मैं सर्व प्रथम १९२२ में पदुआ विश्वविद्यालय के ७वी शताब्दी

के उत्सव मे कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि के रूप मे इटली गया। उस समय भारत में टैसीटोरी का स्वर्गवास हुए कुछ वर्ष हुए थे। १९१९ में यूरोप जाने से पूर्व मुझे आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में डा० टैसीटोरी की सबसे महत्वपूर्ण देन का सूक्ष्म अध्ययन करना पड़ा, यह उनकी अमूल्य कृति "पुरानी पश्चिमी राजस्थानी बोली का ऐतिहासिक व्याकरण" (Historical Grammar of the Old Western Rajasthani Speech) थी। यह भाषा जैसा कि वे कहते थे १६ वी शताब्दी तक समृद्ध रही और जो पश्चिमी राजस्थानी या मारवाड़ी और गुजराती दोनो की जननी थी। उनकी यह महान देन भारतीय भाषा-शास्त्र की शोध पत्रिका इण्डियन एण्टीक्वेरी (Indian Antiquary) के सन् १९१४–१६ के पृष्ठों में अब भी बिखरी पड़ी है। यह बहुत पहले ही पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो जानी चाहिए थी और प्रत्येक स्थान के विद्वान् के लिए प्राप्य हो जानी चाहिए थी। डा० टैसीटोरी की मृत्यु के बाद अपने कुछ इटालियन मित्रों की सहायता से मै उत्तरी इटली में उनके जन्मस्थान उदीने में उनके परिवार वालों को लिख कर इण्डियन एण्टीक्वेरी के पृष्ठो में बिखरी हुई इस रचना की एक पूर्ण प्रति प्राप्त करने में सफल हो सका। इसलिए जब मै कलकत्ता विश्वविद्यालय मे एक जूनियर प्रोफेसर की तरह काम कर रहा था तो मुझे डा० टैसीटोरी की इस बहुत उपयोगी कृति को गहराई से जानने का अवसर मिला। दुर्भाग्य से कलकत्ता की एसियाटिक सोसायटी द्वारा प्रकाशित उनकी कुछ रचनाओ और अंग्रेजी पत्रों के अतिरिक्त उस विविधता-पूर्ण कार्य का कोई ज्ञान नही था जो वे पहले ही इटली मे कर चुके थे, लेकिन यह मेरे लिए पहले भी थी और अब भी बहुत दुःख की बात है कि मैं उनसे व्यक्तिगत रूप से परिचित होने का सौभाग्य प्राप्त नही कर सका। वे मुझ से उम्र मे केवल दो वर्ष बडे थे। डा० टैसीटोरी इस महान् कृति के द्वारा प्रसिद्ध हुए। यह कार्य उन्होने भारतीय आर्यभाषाओ और साहित्य के विस्मृत अध्ययन के लिए भारत मे आने के बाद किया जो स्वयं इटली मे काफी फलदायी हुआ था। मुझे भारत मे उनके जीवन के बारे मे, और उन परिस्थितियों के बारे मे जिनसे उनकी आकस्मिक मृत्यु हुई, कोई पता नही था। वे पहले सन् १९१४ मे भारत आये और पांच वर्ष यहा रहे और कार्य किया। १९१९ के आरंभ मे इटली मे कुछ समय रह कर वे वापिस उसी वर्ष के नवम्बर मे लौट आये। उनका केवल ३२ वर्ष की अवस्था मे यकायक निमोनिया से बीकानेर में स्वर्गवास हो गया।

इस बात के लिए डा० एतिलिओ बोनेतो (Dr. Attilio Bonatto) जो उदीने की परिषद् के सदस्य थे, के बहुत कृतज्ञ है कि उन्होने इटालियन और भारतीय पृष्ठ-भूमि पर टैसीटोरी के जीवन और कृतित्व का वाग्मितापूर्ण और विस्तृत परिचय दिया है। डा० बोनेतो ने २६ फरवरी, १९२५ को उदीने की परिषद् के सामने एक शोक सभा मे भाषण के रूप मे यह परिचय दिया और उन्होने टैसीटोरी के प्रकाशनों की

पूर्ण सूची भी दी है। भारतीय भाषाओं के अध्ययन के इतिहास में इस भाषण का सम्मानपूर्ण स्थान बना रहेगा।

बंगाल मे भी कुछ विद्वानों ने राजस्थानी काव्य के प्रति रुचि प्रकट की। लन्दन से १८२९ में केप्टिन जेम्स टॉड (Capt. James Tod) के दो भागों मे राजस्थान का इतिहास (Amnals and Anttpuities of Rajasthan) जो राजस्थानी शौर्य और संस्कृत का एक अपूर्व भण्डार था, के प्रकाशित होने पर वह बंगाल के लोगो के लिए शीघ्र ही एक मान्य साहित्य बन गया और बंगाला मे उसके कई अनुवाद निकले। केप्टिन जेम्स टॉड की पुस्तक बंगाल के लोगों के लिये एक प्रकार का नया महाभारत वन गया और उन्हें अपनी राष्ट्रीय और देशभक्ति की भावनाओं को दृढ़ बनाने मे सहायक हुई। इसी रचना से प्रभावित होकर राजस्थानी इतिहास और साहसिक प्रेम पर उपन्यास और नाटक लिखे गये और राजस्थान के इतिहास का बंगाल के विद्वानो द्वारा गहन अध्ययन किया जाने लगा। यह कार्य स्वर्गीय महामहोपाध्याय डा० हरप्रसाद शास्त्री द्वारा आरम्भ किया गया। बंगाली इतिहासकारो ने आरम्भिक राजपूत राज्यों के इतिहास के सम्बन्ध मे उल्लेखनीय योग दिया है। टैसीटोरी के इस क्षेत्र मे आने से पूर्व ही महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने कलकत्ता की एसियाटिक सोसाइटी से सन् १९१३ में अपनी वीरकाव्य और ऐतिहासिक हस्तलिखित ग्रन्थों के खोज कार्य की आरम्भिक रिपोर्ट (Preliminary Report on the Operation in Search of mss. of Bardic Chronicles) प्रकाशित कर दी थी। टैसीटोरी का कार्य यद्यपि व्यापक और एक विस्तृत क्षेत्र को लिए हुए था, लेकिन कुछ समय तक बंगाल में यह अज्ञात रहा। भारत के दूसरे भागों, उत्तरी भारत व राजस्थान में भी इस पर ध्यान नही गया। राजस्थान के स्वर्गीय महामहोपाध्याय डा० गौरीशंकर ओझा जैसे महान् विद्वान ने जो ऐतिहासिक अध्ययन में राजस्थानियो के पथप्रदर्शक और आलोक स्तम्भ थे, टैसीटोरी के कार्यों की मुक्त कण्ठ से सराहना की है, लेकिन इस सम्बन्ध मे टैसीटोरी की सेवाओ का पूर्ण परिचय या उनकी पूर्ण प्रशंसा करने का समय अभी नही आया था।

टैसीटोरी द्वारा जो बीज बोया गया उसने अंकुरित होने मे अधिक समय नही लगाया और अन्त में फल दिखाई पड़ने लगा। इस शताब्दी की दूसरी शताब्दी के अन्त में कम से कम एक लेखक राजस्थानी को भारत की आधुनिक साहित्यिक भाषा बनाना चाहता था और हिन्दी, बंगाली, गुजराती, मराठी और अन्य भाषाओं के साथ उसकी बराबरी की माँग कर रहा था। यह व्यक्ति शिवचन्द्र भरतिया था, जिसने कम से कम दो बहुत सुन्दर नाटक आधुनिक साहित्यिक राजस्थानी जिसे वह प्रचलित करना चाहता था, लिखे। निश्चय ही वह टैसीटोरी से अलग स्वतन्त्रता से कार्य कर रहा था, क्योंकि टैसीटोरी का कार्य यूरोपीय भाषाओं और साहित्य के एक वैज्ञानिक विद्वान का था

जब कि भरतिया केवल अपनी मातृभाषा का प्रेमी था और जो उसे उसका अतीत गौरव दिलाना चाहता था; लेकिन टैसीटोरी द्वारा राजस्थानी, रचनाओं के प्रकाशन का अनुसरण भारत में विभिन्न साहित्यक संस्थाओं ने किया। बनारस की नागरी प्रचारिणी सभा, जो हिन्दी साहित्य के लिये एक राष्ट्रीय संस्था के समान है; ने सर्वप्रथम उत्तर भारत के उस मध्ययुगीन महाकाव्य, जो हिन्दी साहित्य और राजस्थानी में एक महान् कृति मानी जाती है, का सम्पादन और प्रकाशन किया। यह रचना पृथ्वीराज चौहान के दरबारी कवि चन्द बरदाई द्वारा लिखित मानी जाने वाली 'पृथ्वीराज रासो' है। पृथ्वीराज चौहान दिल्ली का अन्तिम हिन्दू सम्राट था जो ११९८ मे तिरौरी की दूसरी लड़ाई में शहाबुद्दीन मुहम्मद गौरी द्वारा हराया जाकर मारा गया था। इसके बहुत पहले ११७३-७६ मे कलकत्ता की एसियाटिक सोसाइटी ने उस महान् रचना के सात समयों को अंग्रेजी अनुवाद सहित प्रकाशित कराये थे। ये अंग्रेजी विद्वान जॉन बीम्स (John Beames) और जर्मन व अंग्रेजी के विद्वान डा० ए० एफ० रुडाल्फ हार्नली (Dr. A, F. Rudolf Hornele) के सम्पादकत्व मे प्रकाशित हुए थे। पर यह प्रकाशन पूरा नही हुआ। सन् १९२४ मे एसियाटिक सोसाइटी से पण्डित रामकृष्ण विद्यारत्न ने भी "सूरज प्रकाश" (कविया करणीदान द्वारा लिखित महाराजा श्री अभयसिंह जी से सम्बन्धित राजस्थानी वीर काव्य) प्रकाशित कराया। राजस्थान के वीररसात्मक ऐतिहासिक महाकाव्यो और अन्य बड़ी रचनाओं के प्रति जो उत्तरी भारत की विभिन्न भाषाओं मे लिखी गई थी, के विकास के सम्बन्ध मे हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र और स्वयं राजस्थान मे एक रुचि उत्पन्न हुई। हम्मीर रासो जैसी अन्य रचनाओ के अतिरिक्त बनारस की नागरी प्रचारिणी सभा ने 'ढोला मारू रा दोहा' नामक एक मध्ययुगीन राजस्थानी रचना को प्रकाशित किया। इसने केवल हिन्दी के साहित्यिको मे ही नही, राजस्थानो विद्वानों और राजस्थान के साधारण लोगो मे भी राजस्थानी डिंगल साहित्य को पुनर्जीवित करने की भावना मे एक सीमा चिन्ह का कार्य किया।

इस समय गुजरात और सौराष्ट्र के विद्वान गुजराती राजस्थानी के आरम्भिक स्वरूप के अध्ययन के महत्वपूर्ण कार्य मे लगे हुये थे। गुजरात की कई साहित्यिक संस्थाओ ने प्राचीन या आरम्भिक गुजराती बताई जाने वाली भाषा की रचनाओ को व्याख्या सहित प्रकाशित करना आरम्भ कर दिया था। इस बात से राजस्थानी विद्वानो को भी प्रेरणा मिली क्योकि वे भी अपनी भाषा की उत्पत्ति और विकास और अपने साहित्य का आरम्भ जानने का बहुत ध्यान रखते थे। राजस्थानी भाषा के आरम्भिक स्वरूप पर टैसोटीरी का कार्य जैसा कि उन्होने अपनी "पुरानी पश्चिमी राजस्थानी व्याकरण" मे दिखाया है, अन्य भारतीय भाषाओ के क्षेत्रो में काम करने वाले लोगो द्वारा बहुत सावधानो से अध्ययन किया जाने लगा। राजस्थानी और गुजराती में कार्य करने वालों ने भी इस रचना से सूचना प्राप्त की और साथ में इससे प्रेरणा भी ली।

इस प्रकार टैसीटोरी का कार्य प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से नई भारतीय आर्य भाषाओं में भाषा सम्बन्धी कार्य के लिए सामान्य रूप से और राजस्थानी रचनाओं के सूक्ष्म अध्ययन और उनके पुनर्स्थापन में विशेष रूप से प्रेरणादायक सिद्ध हुआ।

विद्वानो की परिषद् से किसी विचार के निकलने और सड़कों पर लोगों के झुण्ड को गतिशील करने में अधिक समय नही लगता है। इन विद्वानों के कार्य ने, जिसमें टैसीटोरी की महत्वपूर्ण देन भी है, राजस्थानी में एक आम रुचि उत्पन्न कर दी है। राजस्थानी बोलने वाले लोगों में अपनी भाषा के कुछ उत्साही प्रेमी अब राजस्थानी को एक स्वतन्त्र भाषा के रूप में मानने पर गहराई से विचार कर रहे है। इस आन्दोलन का एक केन्द्र सुदूर कलकत्ता में है, जहां मारवाड़ियो की समृद्ध व्यापारिक जाति मे अनेक ऐसे व्यक्ति हैं जो अपनी मातृभाषा के गहरे प्रेमी है, अन्य केन्द्र उदयपुर, जोधपुर, बीकानेर में हैं। पर राजस्थान में अब जैसी परिस्थितियां हैं उनके कारण इस सम्बन्ध में लोगो में दृष्टिकोण की काफी भिन्नता है। कुछ इस पक्ष में हैं कि साहित्यक कार्यो, स्कूलों में शिक्षा के माध्यम, यहां तक कि शासन कार्यों के लिए भी राजस्थानी को पुनर्जीवित किया जाय। दूसरे जो अंग्रेजी और हिन्दी द्वारा पहले से प्राप्त स्थिति से परिचित हैं, इसके बारे में गहरी शंका का अनुभव कर रहे हैं। वे हिन्दी ही रखना चाहते हैं; क्योंकि हिन्दी ने राजस्थानी लोगों को अभिव्यक्ति का एक तैयारशुदा ऐसा रूप दिया है, जिसने उनको पंजाब से बिहार तक उत्तरी भारत की बृहत्तर दुनियां से सम्बन्धित कर दिया है। कुछ वर्ष पूर्व मुझसे उदयपुर आने और इस सम्बन्ध मे अपना मत देने के लिए कहा गया था। यह कार्य बड़ा कठिन है और कभी-कभी तो इस प्रकार के मामले मे जो निश्चित रूप से स्वीकृत और स्थापित खड़ी बोली हिन्दी का विकेन्द्रीकरण करेगा, एक अन्य भाषा के क्षेत्र के व्यक्ति का अपना निश्चत मत देना बिल्कुल अनुचित होगा। लेकिन मैंने राजस्थानी भाषा, इसके इतिहास और विकास के सम्बन्ध मे, जिन्हें मै तथ्य मानता था, राजस्थानी बोलने वालो के सामने प्रस्तुत किया। मैंने सुझाव दिया कि इसका हल स्वयं राजस्थान के लोगों के पास ही है और भाषा सम्बन्धी विभिन्न प्रश्नो पर विचार करने के बाद केवल वे ही निर्णय कर सकते हैं कि खड़ी बोली हिन्दी को गौरवपूर्ण स्थान देने के बाद राजस्थानी को एक भिन्न भाषा के रूप में पुनर्जीवित करना उनके लिए ठीक होगा या राजस्थान मे इसे गौण भाषा के रूप में चालू रखना ठीक होगा। इसी प्रकार दक्षिणी फ्रास में वहां के लोग (Provnecals) ही केवल निर्णय कर सकते हैं कि वहां की भाषा (Provincial language) को एक बार पुनः अपनी पुरानी और बहुत प्रौढ़ साहित्यिक परम्परा के साथ एक स्वतन्त्र भाषा के रूप मे पुनर्स्थापित करना सम्भव होगा। लेकिन यहां के लोगों ने उत्तरी फ्रांस की फ्रेंच को स्वीकार करने के लिए सहमति दे दी है, विशेषतः जब उनकी भाषा, फ्रेडरिक मिस्ट्रल (Frederic Mistral) ? (इन्होंने प्रातीय भाषा मे वहां के ग्राम्य जीवन की पृष्ठ भूमि

पर लिखे गए अपने प्रसिद्ध रोमांटिक काव्य (Mireio or Mireille) पर साहित्य का नोबल पुरस्कार प्राप्त किया था) और जस्मिन (Jasmin) द्वारा पुनर्जीवित करने के प्रयास के बावजूद स्थानीय ग्राम्यभाषा के अनेक रूपों में विभाजित हो गई थी।

एक बात स्पष्ट है। अब राजस्थान राज्य एक नाम से और एक संगठित राज्य के रूप में है। राजस्थान के लोग हमेशा अपनी स्थानीय भाषा और इसके साहित्य और हमारी भारतीय जन संस्कृति का गौरव अनुभव करते रहे है। हिन्दी का अध्ययन करते और अपने समस्त जीवन कार्यों के लिए इसका प्रयोग करते हुए, वे स्थानीय बोली और संस्कृति की परम्परा को भी जीवित रखना और उसका अध्ययन करना चाहते है।

४
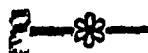
राजस्थानी साहित्य

राजस्थानी-साहित्य से हमारा आशय 'राजस्थान' नामक भू-भाग मे बोली जाने वाली जन-भाषा के लिखित और मौखिक साहित्य से है। 'राजस्थान' शब्द से यद्यपि हमारा साहित्यिक-समाज अब भली भाति परिचित है, पर हमने अपने इस प्रदेश को उक्त नाम से पहले कभी नही पुकारा। इस शब्द के आविष्कार को पूरे सौ साल भी नही हुए होगे। कुछ प्राचीन चारण-गीतों मे राजस्थान[1] शब्द का प्रयोग अवश्य मिलता है पर इसके पहले वह इतना प्रचलित न होने पाया था जब कि सर्व प्रथम प्रसिद्ध इतिहासकार कर्नल टाड ने अपने Annals of Rajasthan मे इसका प्रयोग किया। इसके बाद सैकड़ो देशी एवं विदेशी विद्वानो ने इस शब्द को अपनाया जिसके परिणाम स्वरूप इसका प्रचार इतना बढ़ गया कि आज कोई भी दूसरा शब्द (पर्याय) इसकी टक्कर मे खड़ा नही रह सकता। जिस प्रकार राजनीतिक क्षेत्र मे अंग्रेज अधिकारियो ने इसको 'राजपूताना' कह कर पुकारा तथा हमारे व्यापारियो ने सुदूर भारत के कोने कोने मे इसको 'मारवाड़' का नाम दिया, ठीक उसी प्रकार साहित्य के क्षेत्र मे इसे राजस्थान का नाम दिया गया। उपर्युक्त तीनो क्षेत्रो मे आज भी यह प्रदेश तीन विभिन्न नामो से पुकारा जाता है।

---

[1]राजस्थान—इस शब्द का नैणसी, बांकीदास आदि ख्यात-लेखकों ने राजधानी के स्थान पर प्रयुक्त किया है, पर लगभग सौ वर्ष पहिले के दो-एक गीतों में राजस्थान के लिए भी इसका प्रयोग हुआ है—लेखक

(१) मारुदेश प्रसिद्ध छे—जैन गीत (गुर्जर कवियों-देशीयोनी अनुक्रमणिका) अप्रकाशित।

(२) सूचनिका मारू भाषारी—कोई मारूभाषा का कवित छे कई पंजाबी पिण छे गजसिंहजी रा निर्वाण कवित्त (गुटका)।

हमारे प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों में 'राजस्थान' और 'राजस्थानी' के स्थान पर मरुदेश, मरूधर, मारूदेश और मरूदेश भाषा, मरूभाषा, मारूभाषा इत्यादि शब्द मिलते हैं, परन्तु 'राजस्थान' शब्द से जिस भू-भाग का आशय हम ग्रहण करते हैं वह मरूदेश के अन्तर्गत भू-भाग से भिन्न है। प्राचीन ग्रन्थों मे जहां मरूदेश आता है वहां मेवाड़ देश, मालवा देश, ढूंढाड़ देश इत्यादि भी आते हैं। अतः हमारा राजस्थान' केवल मरूदेश का पर्याय न होकर उक्त सम्पूर्ण भू-भागों का समन्वय है और इसी आशय से टाड, ग्रियर्सन, टैसीटोरी आदि विद्वानों ने इसका प्रयोग किया है।

यद्यपि "राजस्थान" और "राजस्थानी" शब्द अधिक प्राचीन नही है परन्तु इन नामों मे सुप्रसिद्ध जो अमर साहित्य हमारे पास है वह तो अत्यन्त प्राचीन है। विक्रम की आठवी सदी से लेकर एक हजार दो सौ वर्षो के इस दीर्घकाल में इस प्रदेश ने साहित्य की जो अमूल्य सेवाएं की है वे संख्यातीत हैं। अपभ्रंश की इस सर्व प्रथम सौदर्य प्रसूति ने एक बार सम्पूर्ण उत्तरी और पश्चिमी भारत को अपनी रूप-माधुरी से मंत्र-मुग्ध कर लिया था। शताब्दियो तक राष्ट्रभाषा के गौरवान्वित पद पर आसीन रह कर इस देवी ने यवनों के आक्रमणो से पदाक्रात होते हुए, देश को बारम्बार अटूट प्रोत्साहन प्रदान किया था। इसकी उस ओजपूर्ण छटा ने आजतक हजारों लेखको और कवियो को जन्म दिया है जिनकी काव्य-माधुरी के कलनाद से एक बार सम्पूर्ण आर्यावर्त्त गूंज उठा था तथा जिनकी ओजस्वी रचनाओं से आज भी राजस्थानी–साहित्य का कलेवर लदा पड़ा है। राजपूताना, गुजरात एवं मध्यभारत के इतने लम्बे दायरे मे बोली जाने का गर्व मध्ययुग की अन्य किसी भाषा को प्राप्त नही था। Old Western Rajasthanı के नाम से प्रसिद्ध यह भाषा अभी सोलहवी शताब्दी तक समूचे गुजरात की जन-भाषा थी। इसके बाद पिछली तीन चार शताब्दियो तक इसने गृहस्वामिनी बन कर राजस्थान को कृतकृत्य किया। मुगल सत्ता के आधिपत्य मे रह कर भी राजस्थान ने अपनी भाषा का मोह नही छोड़ा था। जिस समय मुगल सभ्यता के साथ साथ फारसी भाषा और लिपि ने भी भारतीय भाषाओ को आवृत करना आरंभ कर लिया था उस समय राजस्थान ने अपनी भाषा और साहित्य को और भी अधिक प्रोत्साहित किया। इसी कारण हमारी भाषा मे जितने साहित्य की रचना मुगल सत्ता

---

(३) "मरूभाषा निर्जल तजिकरी ब्रजभाषा चीज"—गोपाल लाहोरीकृत रस-विलास (सं० १६४४)।

(४) "मुरधर भाषा मंछ कवि" रघुनाथ रूपक।

(५) "मरूदेशिया भाषा" वंश भास्कर।

(६) "आगई ए पण रासज हतू मारूनी भाषा वोल तूं"—कनकसुन्दर कृत देवदत्त रास (संवत् १६६२)।

की इन दो तीन शताब्दियों में हुई उतनी और कभी नहीं। परन्तु यह खेद का विषय है कि पिछले ५०-६० वर्षों से इस भाषा में साहित्य सृजन की इतिश्री सी हो गई है। जबकि बंगाल, गुजरात, महाराष्ट्र इत्यादि प्रदेश अपनी अपनी भाषाओं के पुर्ननिर्माण मे जुटे हुए है उस समय राजस्थान अपनी पूर्व समृद्ध भाषा की सुधि विस्मृत कर निश्चेष्ट बैठा हुआ है, यह अत्यन्त शोचनीय है।

मारू भाषा, डिंगल, मारवाड़ी और राजस्थानी के नाम से जितना भी साहित्य उपलब्ध है वह सब इसी पुरातन भाषा की देन है। देववाणी संस्कृत को छोड़ कर सम्भवतः अन्य किसी भी भारतीय भाषा का साहित्य-भंडार इतना सुसंपन्न नही। लगभग १२०० वर्षो से जिस शृंखलाबद्ध साहित्य की रचना राजस्थान ने की है वह केवल राजस्थान के लिए ही नही किन्तु सम्पूर्ण भारतवर्ष के लिए गौरव की वस्तु है।

जैसा कि प्रत्येक भाषा में होता है, राजस्थानी में भी मौखिक एवं लिखित दोनों प्रकार का ही साहित्य मिलता है। मौखिक साहित्य भी उतने ही परिमाण मे उपलब्ध है जितना कि लिखित। प्राचीन हस्तलिखित राजस्थानी साहित्य प्रधानतया निम्नलिखित चार रूपों मे विभाजित किया जा सकता है—

(१) चारणी-साहित्य
(२) ब्राह्मणी-साहित्य
(३) जैन-साहित्य
(४) संत-साहित्य

चारणी साहित्य

इसे हम अपनी भाषा का प्रधान साहित्य कह सकते हैं। यह मुख्यतया वीर रसात्मक है पर शृङ्गार और शान्तरसादि की रचनाएं भी कम नही हैं। इसी साहित्य के कारण राजस्थानी साहित्य की इतनी अधिक सराहना देशी एवं विदेशी विद्वानो ने की है। विशेषकर चारण कवियो और लेखकों की रचनाएं ही उक्त वर्ग के अन्तर्गत आती है अतः उन्ही के नाम पर इसका नामकरण कर दिया गया है अन्यथा ढाढी, ढूम, ढोली, भाट इत्यादि जातियों की रचनाएं भी इसी श्रेणी की है और इसी वर्ग मे सम्मिलित हैं। कुछ राजपूतों ने भी इस कोटि की रचनाएं की हैं।

यह साहित्य निम्नलिखित रूपों में उपलब्ध हैः—

(१) प्रवन्ध काव्यों के रूप मे

(२) गस्तों के रूप मे (Commemorative songs)—साख री कविता

(३) दोहों, सोरठों, कुण्डलियो, छप्पयों, कवित्तों, त्रोटकों, झूलणों, सवैयों इत्यादि विभिन्न स्फुट छन्दो के रूप मे।

१. प्रवन्ध-काव्यों के रूप मे मिलने वाले जिस साहित्य की खोज आज तक हो चुकी है उसके कुछ प्रधान ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं :—

(१) वेलि क्रिसन रुकमणीरी—राठोड़ प्रिथीराज

(२) जइतसी रउ छन्द—वीठू सूजा नगराजोत
(३) रामरासो—माधोदास चारण
(४) सूरसिंह रउ छन्द
(५) महादेव पारवती री वेलि—किसनो (आढा ?)
(६) नागदमण—साया झूला
(७) रतन महेशदासोत री वचनिका—खिडियो जागो
(८) अचलदास खीचीरी वचनिका—चारण सिवदास
(९) प्रिथीराज रासो—चन्द बरदाई
(१०) वीरमायण—ढाढी बहादर
(११) ग्रन्थराज—गाडण गोपीनाथ
(१२) वरसलपुरगढविजय—जोगीदास
(१३) सूरजप्रकाश—करणीदान
(१४) वंशभास्कर—सूर्यमल्ल
(१५) रतनजसप्रकाश—सागरदान
(१६) जसरत्नाकर— ?
(१७) रूकमणीहरण—वीठलदास
(१८) अजीतविलास— ?
(१९) गुण जोधायण—गाडण पसाइत
(२०) सूरदातार रो संवाद—बारठ सांकर
(२१) गुण विजे व्याह—बारहठ मुरारिदान
(२२) पाबूजी रउ छन्द—वीठू महा
(२३) विवेकबार निसाणी—केशवदास
(२४) जैतसी रास— ?
(२५) निमंधाबंध—धधवाडियो चूंडो
(२६) बांकीदास ग्रन्थावली—बांकीदास।

२. 'गीत' छन्द में मिलनेवाली ऐतिहासिक कृतियाँ संख्यातीत कही जा सकती है' एक एक गुटके मे ऐसे हजारो गीत मिलते हैं और न जाने कितने ऐसे गुटके गांव-गांव और घर घर के कोने-कोने मे मटकों, आलों और खड्डो मे पड़े सर्वनाश की प्रतीक्षा कर रहे हैं। राजस्थान के सच्चे इतिहास का पुष्ट प्रमाण देनेवाली जितनी सामग्री इन गीतों मे मिल सकती है, उतनी अन्यत्र कही भी नही। हमारी प्राचीन संस्कृति और सभ्यता का वास्तविक अध्ययन इन गीतो से ही हो सकता है। गीत प्रायः प्रत्येक ऐतिहासिक व्यक्ति के विषय मे मिलते है। सच्ची घटनाओं के चित्रांकण के साथ-साथ इन गीतों में आश्रयदाताओं का अत्यधिक गुणगान अवश्य मिलता है जो कि कभी-कभी इतिहासकार

को भ्रम में डाल देता है, पर अधिकतर वह इतना स्पष्ट है कि एक अच्छे आलोचक की दृष्टि से बच नही सकता। प्रायः प्रत्येक कवि एवं लेखक ने ये गीत लिखे हैं, जिसमें कही निष्पक्ष भाव से किसी राष्ट्रीय नेता का व्यक्तित्व वर्णन है, कही उसके जीवन की किसी सुप्रसिद्ध घटना का चित्र है, कही किसी वीर के उत्तेजनात्मक युद्ध की प्रशंसा है तो कही किसी स्वामिभक्त का युद्धभूमि में प्राणदान, कही कवि के आश्रयदाता की दानशीलता, वीरता आदि सद्गुणो का यशगान है, कही किसी संत एवं देवता के महान् कार्यो की वन्दना है, और कही किसी स्त्री के मुख से उसके पति की व्याजस्तुति अलंकारान्तर्गत सराहना। इस प्रकार जन्म से लेकर मृत्यु तक, जीव की प्रत्येक वर्णनीय घटना को इन रचनाओं में स्थान मिल गया है। जिस प्रकार इन गीतों की निश्चित संख्या का पता लगाना दुष्कर है उसी प्रकार इन गीतकारों की पूरी-पूरी सूची बनाना भी उतना ही दुष्कर है। अद्यावधि ज्ञात कुछ प्रसिद्ध गीत-लेखकों के नाम इस प्रकार हैः—

(१) बारहठ चौहथ (२) सिढयाच चौभुजो (३) आढो किसनो (४) आढो दुरसो (५) गाडण पसाइत (६) फरसो (७) आसियो करमसी (८) दूदो (९) खिडियो जगमाल (१०) गाडण केसवदास (११) बारठ ईसर (१२) हरसूर (१३) सांदू भालो (१४) धधवाडियो मौको (१५) ठाकुरसी देवावत (१६) डूंगरसी (१७) तेजसी (१८) साँकर (१९) रतनू धर्मदास (२०) बीठू मेहो (२१) राठोड़ प्रिथीराज (२२) आसियो रतनसी (२३) धधवाडियो खीवराज (२४) बारहठ कल्याणदास (२५) लालस खतसी (२६) मंगरो ढाढी (२७) पद्मा चारणी (२८) झीमी चारणी (२९) बारठ नरहरदास (३०) माधोदास (३१) कवियो तिलोकदास (३२) लूणकर्ण (३३) साइंया भूला (३४) नेतो (३५) गाडण झाँझर्ण (३६) नारायणदास (३७) बगसो गोवरधन (३८) हरदास (३९) गोइन्दास (४०) गाडण चोलो (४१) धधवाडियो माधवदास (४२) गेपो तूंकारो (४३) लाखो (४४) साँदू कूंभो (४५) गाडण खेतसी (४६) गाडण रामसिंह (४७) मीसण आनंद (४८) भाट चन्द (४९) भाट लल्ल (५०) दानी (५१) सुरताण (५२) बारठ चतुरो (५३) बीठू घड़सी (५४) राजसिंह (५५) लिखमीदास।

३. दोहो, सोरठो, कुण्डलियो आदि के रूप में मिलने वाला साहित्य गीत-साहित्य से भी अधिक विस्तृत एवं असीमित है। दोहा छंद राजस्थानी-साहित्य का सबसे प्राचीन प्रकार है, जिसके उदाहरण विक्रम की दूसरी एवं तीसरी शताब्दी की रचनाओं तक में भी मिलते हैं। प्राचीन होने के साथ साथ यह अत्यधिक प्रचलित भी हैं। जन-साधारण की मौखिक रचनाएं भी जितनी दोहा छंद में है उतनी अन्य किसी छन्द में नही। सारांश यह है कि राजस्थानी साहित्य का एक बहुत बडा अंश दोहों के रूप में है। विद्वानों का अनुमान है कि यदि उचित अनुसंधान किया जाये तो दोहों का संग्रह एक लाख से भी ऊपर तक किया जा सकता है, जो सत्य ही है। राजस्थानी की बहुत सी रचनाएं ही एक मात्र दोहा-छन्द में है।

कुछ प्रसिद्ध दोहा-संग्रहो के नाम इस प्रकार हैः—

(१) किवलास रा दूहा (२) सत्रसाल रा दूहा (३) सरोत रा दूहा (४) नागडा रा दूहा (५) परिहा रा दूहा (६) जत्रानी रा दूहा (७) ढोलं मारू रा दूहा (८) जेठवै रा दूहा (९) खीवरै रा दूहा (१०) जमले रा दूहा (११) सोहणी रा दूहा (१२) धवल रा दूहा (१३) सुहप रा दूहा (१४) रामचन्द्र रा दूहा (१५) पीठवै रा दूहा (१६) वीझरे रा दूहा (१७) सोरठ रा दूहा (१८) रसालू रा दूहा (१९) ठाकुरजी रा दूहा (२०) गंगाजी रा दूहा (२१) प्रिथीराज रा दूहा (२२) सज्जण रा दूहा।

कुछ प्रसिद्ध दूहा लेखको के नाम भी इस प्रकार हैः—

(१) उदैराम (२) जसराम (३) सूरीयौ (४) प्रिथीराज (५) जमाल (६) फरसो (७) सुहव (८) सोनल (९) अग्रदास।

सोरठा, कुण्डलिया, त्रौटक आदि अन्य छन्दों की रचनाएं भी परिभाषा में बहुत अधिक है। कुछ प्रसिद्ध संग्रहो के नाम देखिएः—

(१) राजियै रा सोरठा (२) जसै धवलोत रा कुण्डलिया (३) केहर रा कुण्डलिया (४) मयण रा कवित्त (५) गजसिंह रा झूलणा (६) अमरसिंह रा सवैया (७) सूरजसिंह रा त्रौटक (८) करमसैण री झमाल इत्यादि।

इसके अतिरिक्त हमारे गद्य साहित्य का सारा श्रेय भी लगभग उक्त वर्ग के लेखको को ही है। ख्यात, वात, विगत, पीढी, पट्टावलि, पिरियावली, वंसावली, हाल, हकीकत, वृत्तान्त, इतिहास, कथा, कहानी, दराजी, दुवावेत इत्यादि नामो से वर्णित राजस्थानी गद्य का भण्डार अथाह है। इसके अतिरिक्त ब्राह्मणी-साहित्य के रामायण, महाभारत तथा पौराणिक अनुवादों, जैन साहित्य के कथा संग्रहो एवं ज्योतिष, वैधक, संगीतादि के स्फुट ग्रन्थों को छोड़कर हमारे गद्य साहित्य मे और कुछ है ही नही। बांकीदास की ऐतिहासिक बातों का संग्रह और सिंढायच दयालुदास की "राठोड़ां री ख्यात" राजस्थानी गद्य-साहित्य की दो महान् कृतियाँ हैं। यदि ये दो रचनाएं और प्रसिद्ध चारण विद्वान सूर्यमल्ल के वंशभास्कर का गद्य भाग हमारे भण्डार मे से निकाल लिए जायं तो नैणसी की ख्यात के अतिरिक्त और रह ही क्या जाता है। बाँकीदास और दयालदास चारणो गद्य-साहित्य के दो अमर कलाकार है। आज उन्ही की कृतियो के बल पर हम अपने गद्य-साहित्य की सराहना करने जा रहे है। बाँकीदास, दयालदास, और सूर्यमल्ल की कृतियाँ राजस्थानी के सरस गद्यांशो की अमूल्य निधियाँ ही नही राजस्थान के इतिहास की अत्यधिक प्रामाणिक रचनाएं भी है।

राजस्थान के राजपून राज्यो में चारण का स्थान बहुत उच्च था। चारण ही इतिहासकार, चारण ही राजकवि और चारण ही मन्त्री भी हुआ करते थे। अतः राजपूत राजाओं के आश्रय में रह कर चारण ने जितना लिखा उतना जैन यतियो के

अतिरिक्त और किसी ने नही। राजा के जन्म की बधाई गाई तो चारण ने, राज्याभिषेक का गीत गाया तो चारण ने, विवाह का मंगल-गान गाया तो चारण ने, सौन्दर्य की, गुण की, कायरता की, वीरता की और दानशीलता की आलोचना की तो चारण ने। राजपूत के जीवन में चारण प्राण बन कर समाया हुआ था। मध्य युग मे तो राजपूत और चारण इतने घुलमिल गए थे कि इन दो शब्दों मे अत्यधिक साम्य ही नही, एक दूसरे का बोध भी स्वतः ही होने लग गया था। इसी घनिष्ठ सम्बन्ध के कारण राजपूत के राज्य का सम्पूर्ण विवरण लिखना भी चारण ही का कार्य बन गया था। इसी कारण प्रायः सभी राजपूत राज्यो के इतिहास चारणो के ही द्वारा लिखे गए हैं। इन साहित्य सेवियो की ऐसी ही कुछ प्रसिद्ध कृतियों का नामोल्लेख हम यहां कर देना चाहते है।

(१) देशदर्पण—दयालदास (२) आर्याख्यानकल्पद्रुम—दयालदास (३) उदैपुर री ख्यात (४) जोधपुर रै राठोड़ां री ख्यात (५) नागौर री हकीकत (६) हिन्दुस्तान रै सहरां री विगत (७) मारवाड़ री ख्यात (८) दलपतविलास (९) दिल्ली रै पातसाहा री विगत (१०) जैपुर मे सैव वैष्णवांरौ झगडो हुवा तैरो हाल (११) सांखला दहिया सूं जांगलू लियौ तै रो हाल (१२) औरंगजेब री हकीकत (१३) जोधपुर रै राठौड़ा री पीढ़ियां (१४) पडिहारा री पीढियां (१५) नरसिंहदास गौड़ री दुवावेत।

(२) जैन—साहित्य

भगवान महावीर के इन उपासकों ने भारतीय साहित्य की जो अमूल्य सेवाएं की हैं उनके मूल्य का प्रतिपादन नही चुकाया जा सकता। जैन आचार्यों, यतियों, मुनियो एवं श्रावकों ने भारत के कोने कोने में संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं के साहित्य की रचना की है, और प्राचीन साहित्य को लिपिबद्ध कर उसे अपने भण्डारो मे सुरक्षित भी किया है। लोक-भाषा के साहित्य को जितना प्रोत्साहन जैन धर्मावलम्बियों के द्वारा मिला उतना अन्य किसी वर्ग के द्वारा नही। एक राजस्थान ही नही सभी प्रान्तो मे जहां जैन धर्म का प्रचार प्राचीन काल से ही चला आ रहा है, जैनियों ने वहां की भाषा के भंडार को अपनी रचनाओं द्वारा अवश्य भरा है। राजस्थानी और हिन्दी के तो प्राचीनतम उदाहरण ही जैन ग्रंथों मे मिलते हैं और जब तक जैन भंडारों का समयक् पर्यवेक्षण नही होगा तब तक हिन्दी और राजस्थानी भाषाओ का पूरा इतिहास नही तैयार हो सकता। गुजरात के विद्वानों ने इन्ही भण्डारों मे से अपनी भाषा का इतिहास खोज निकाला है।

आधुनिक जैन—समाज धार्मिक श्रद्धा-भक्ति में सर्वोपरि है। अतः जैन यतियों के विद्याव्यसनी होने का इस समाज पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। इसी के फलस्वरूप इस समाज ने भारतीय साहित्य को उच्चकोटि के साहित्यकार दिए है। हमने सैकड़ो

की संख्या मे ऐसे ग्रन्थ देखे है जिनकी रचना तथा लिपि जैनो के संरक्षकत्व मे हुई। इतना ही नही जैन यति और उनके शिष्य अब भी, मुद्रणालयो के इस युग मे, प्राचीन पुस्तको की प्रतिलिपिया करते और करवाते रहते है। उनका इस दिशा मे इतना अच्छा अभ्यास हो गया है कि सुन्दर से सुन्दर लिपि मे वे सुबह से लेकर सायंकाल तक लगभग ५०० श्लोक लिख लेते हैं। जितने प्राचीन ग्रन्थ मिलते है उनमे भी सुन्दर प्रतिया जैनियो की ही लिखी हुई होगी। जैनियों मे मेथन जाति के लोग बहुत अच्छे लिपिकार होते है। इन्ही कारणों के आधार पर हम कह सकते है कि प्राचीन भारतीय साहित्य की सुरक्षा का जितना श्रेय जैन धर्मावलम्बियो को है उतना और किसी वर्ग विशेष को नही। जैनियो के उपाश्रय और भण्डार हमारे देश के जादू भरे पिटारे है। एक नया उपाश्रय या भंडार खुलते ही सैकड़ो जादू संसार के सामने आ जाते हैं। कितने ही अज्ञात लेखको की कला-कृतिया दिन के उजाले मे अपनी मर्मभरी कथाएं सुनाने को उद्यत हो उठती है।

राजस्थान के लोक-साहित्य को लिपिबद्ध करने का भी अधिकाश भाग जैनियों को ही है। लोक-साहित्य के दूहे, कथाएं और गीत इन भण्डारो मे ही मिलते हैं अन्यत्र नही। जैन साहित्य मे प्रबन्ध, काव्य, कथाएं, रास, फाग, सझाय और गीत ही प्रमुख विषय है। इनके अतिरिक्त धर्म सम्बन्धी रचनाएं तथा विभिन्न सूत्रो के भावार्थ एवं टीकाएं भी प्रचुर परिमाण मे उपलब्ध है। यदि जैन भंडारो का उचित पर्यवेक्षण किया जाय तो हजारो की संख्या मे ऐसे गीत मिल सकते है जो हिन्दी संसार मे सूर-सागर और रामचरित मानस के मधुर से मधुर पदो की समानता का दावा कर सकते हैं। इन गीतो मे पाई जाने वाली भक्ति, संयोग और वियोग की कल्पनाएं भारतीय साहित्य की चिरकल्पित निधिया होकर भी मौलिकता से ओतप्रोत है। राजस्थानी भाषा के गीतो का तो सर्वस्व ही नवीन है, सरस है, सुन्दर है और आल्हादकारी है।

(३) ब्राह्मणी साहित्य

ब्राह्मणी–साहित्य मे वैताल पच्चीसी, सिंघासण बत्तीसी, सूआ बहोत्तरी, हितोपदेश, पंचाख्यान आदि कथाओ, भागवत पुराण, नासिकेत पुराण, मार्कण्डेय पुराण, सूरज पुराण तथा पदम पुराण आदि पुराणों एवं भागवद्‌गीता। रसतरंगिनी, त्रिल्हण पाशिका, रसरत्नाकर, रामायण और महाभारत आदि ग्रंथो के अनुवाद ही प्रधान है। वैद्यक, ज्योतिष, संगीत एवं मन्त्र-शास्त्र के स्फुट ग्रंथ भी ब्राह्मणो के द्वारा लिखे गए थे। ब्राह्मणों का स्थान सदैव से ही धर्म गुरुओ का रहा है, अतः भारतीय धर्मशास्त्र से ही इनका विशेष सम्बन्ध रहा है, और इसीलिए धर्मशास्त्र विषयक जितने ग्रन्थ हैं उनमे अधिकाश ब्राह्मणों के ही लिखे हुए हैं। ब्राह्मणो की प्रधान भाषा संस्कृत रही है, अतः संस्कृत के साथ इनका अविच्छिन्न सम्बन्ध रहा है। संस्कृत के परिपोषको

के रूप मे भारतीय साहित्य इनका चिर ऋणी रहेगा। विदेशी विद्वान तो सम्पूर्ण संस्कृत-साहित्य को ही ब्राह्मणी-साहित्य के नाम से पुकारते है।

भारतीय इतिहास के उत्तर काल मे ब्राह्मण युग की प्रधानता का अवसान होते ही भारतीय समाज मे ब्राह्मण की स्थिति का भी पतन हो गया। चारणों को राजपूत राजाओं का आश्रय मिल रहा था और जैन यतियों को धनिको का। परन्तु ब्राह्मण को उसकी पूजा-पाठ और धार्मिक विश्वास के अतिरिक्त और किसी का आश्रय न था। अतः साहित्य से उनका नाता प्राचीन संस्कृत काव्यो, दर्शन ग्रन्थ और रामायण, महाभारत आदि के पठन-पाठन तक ही सीमित रह गया था। मृतक के सम्बन्धियो को गरूड़ पुराण सुनाना, नूतनजात बालक की जन्मपत्री बनाना, विवाह कराना और व्रत कथाएं सुनाना, यही क्रियाएं ब्राह्मण की आजीविका के साधन थे। अतः ब्राह्मण को साहित्य सेवा का अवकाश न था। लिपिकार ब्राह्मण अवश्य थे जो प्रतिलिपि कर अपना पेट पालते थे। राजस्थान में ब्राह्मण की सामाजिक स्थिति का जितना अधःपतन मुगल काल मे हुआ उतना और कभी नही। हिन्दी के साहित्यसेवी ब्राह्मणों का उल्लेख हम यहां नही कर रहे हैं। कहने का आशय यह है कि उपरी निर्दिष्ट विषयों के अतिरिक्त ब्राह्मणों की मौलिक रचनाएं हमारे साहित्य मे नही के बराबर है।

(४) संत-साहित्य

सन्त-साहित्य का जितना अच्छा संग्रह राजस्थान मे है उतना अन्य कही नही। इसके कई कारण है। पहला तो यह है कि राजस्थान हिन्दू नरेशों के आधीन रहने के कारण यहाँ हिन्दू धर्म को सदैव वाँछित प्रोत्साहन मिलता रहा है। मुगलों की यातनाओं से त्रस्त संत समाज जब राजस्थान के भ्रमण के लिए आया तो यहाँ की शान्तिप्रिय जनता और प्रशान्त वातावरण को देखकर उसका हृदय पिघल गया। फलतः उन्होंने यहां वहुत काल तक निवास किया। गोरख, दादू, कबीर और रैदास आदि महात्माओं ने इस भूमि पर विचरण किया है और अपनी वाणियों से राजस्थानी समाज को जागरित किया है। गिरिधर की दीवानी मीराँ, ब्रह्मज्ञानी सुन्दर दास और महात्मा जसनाथ इत्यादि की जन्मभूमि होने के कारण भारतीय संतो के लिए राजस्थान एक तीर्थस्थल सा वन गया है। संतों की पवित्र स्मृति में लगने वाले कई मेले अब तक चले आ रहे हैं जिनमें दूर-दूर से हजारों की संख्या में साधू लोग आते है। राजस्थान के इस सम्वन्ध के कारण अन्यान्य भारतीय सन्तों की वाणी में भी राजस्थानी भाषा का यथेष्ट पुट विद्यमान है। कवीर की साखियो और पदों में राजस्थानी के सैकड़ो मुहावरे, कहावतें और शव्द घुल मिल गए है। मीरा की अमर वाणी समूचे भारत की गौरवमयी ध्वनि वनकर गूंज रही है। राजस्थान मे सन्त समाज का अव भी अत्यधिक प्रचार है। नाथपंथी और दादूपंथी साधू जोधपुर और जयपुर राज्यों के आश्रय में पलते आ रहे हैं। इसके अतिरिक्त रामसनेही, निरंजनी आदि अन्य संप्रदायों के लोग भी यहाँ निवास

करते हैं। सन्त साहित्य मे दादू, कबीर, गोरख, मीरा, रैदास, जसनाथ, सुन्दरदास, सोढ़ीनाथी, वाजीन्द, महमद, नरसी आदि की वाणियो के अतिरिक्त महाराजा प्रतापसिंह, प्रतापकुंवरि, जनगोपाल, बालकदास इत्यादि लेखको की पौराणिक चरित्र-गाथाएं भी बहुत हैं। राजस्थान का सन्त-साहित्य भरापूरा है। इस साहित्य की बहुतसी सामग्री विचरते हुए एवं गृहस्थी साधू सन्यासियो के तंबूरो, सितारो और खड़तालो पर भी सुनी जा सकती है। इस मौखिक साहित्य को लिपिबद्ध करना और इस विषय के प्राचीन साहित्य का अनुसन्धान करना अत्यन्त महान् एवं उपकार की वस्तु होगी। राजस्थान अपने चारण साहित्य और सन्त साहित्य के बल पर ही गर्वभरी वाणी मे गर्जना कर रहा है।

(५) गद्य–साहित्य

राजस्थानी का गद्य-साहित्य भारतीय इतिहास की अमर निधि के रूप मे चिर-स्मरणीय रहेगा। देशी एवं विदेशी विद्वानों ने अत्यन्त सराहना भरे शब्दों मे इस की प्रशंसा की है। नैणसी की ख्यात, दयालदास की ख्यात, बाँकीदास की ऐतिहासिक बातें, वंशभास्कर के गद्यांश तथा आइने अकबरी, तवारीख फरिश्ता, अखलाक मोहसनी, भागवतपुराण (दशमस्कन्ध) और रामचरितमानस आदि ग्रन्थो के अनुवाद राजस्थानी गद्य की महानता का ढिंढोरा पीट रहे है। आज से सैकड़ो वर्ष पहले इस भाषा का गद्य भण्डार इतना भरा-पूरा था। राजस्थानी का वात-साहित्य भी अपनी एक निराली विशिष्टता लिए हुए है जिसकी टक्कर मे किसी दूसरी भाषा का प्राचीन कथा-साहित्य नही ठहर सकता।

राजस्थानी साहित्य मे वात, गीत और दूहा ये तीन प्रकार की रचनाएं संख्यातीत कही जा सकती है। लिखित रूप मे मिलने वाली ये कृतिया हजारों की संख्या में हमने देखी हैं। इनमे से बहुत कम ऐसी है जिनके रचियताओ के नाम ज्ञात है। वात-साहित्य के सम्यक् पर्यवेक्षण के बाद विभिन्न दृष्टियो से इसके विभिन्न विभाग कर सकते है। प्रत्येक विभाग के अन्तर्गत आने वाली कतिपय वातो का नामोल्लेख करके हम राजस्थानी वात-साहित्य की विशेषताओ का दिग्दर्शन कराने का प्रयत्न करेगे।

(१) कथानक की दृष्टि से—

(क) ऐतिहासिक—राव रिणमल री वात, पाबूजी री वात, कानड़दे री वात, पताई रावल री वात, राव सलखैरी वात, मेहदरै राठौड़ री वात, नापै सांखले री वात, लाखै जाम री वात, राव अमरसिंह री वात, सिद्धराज जयसिंहदे री वात।

(ख) अर्द्ध ऐतिहासिक—गोगंजी री वात, सपणी चारण री वात, जोगराज चारण री वात, राजा मानधाता री वात, पीरोजसाह पातिसाह री वात, मूमल री वात, पातिसाह री वात।

(ग) काल्पनिक—वात ठग री बेटी री, चांदकुंवर री वात, पदमकला री वात, फोगसी ऐ वाल री वात, कोड़ीधज री वात, चंदन-मलयागिरि री वात, माल्हाली री वात, आसारी वात।

(घ) पौराणिक—सोमवती अमावस री कथा, रिषीपांच्या री कथा, निर्जला, जोगणी एकादसी री कथा (ब्रह्मवैवर्त्त पुराण), बुधास्टमी व्रत कथा, दत्तात्रेय २४ गुरु किया तैरी वात, राजा नल री वात, जन्मास्टमी री कथा, रामनवमी री कथा, गोविंदमाधोजी री कथा, दुआरका-महातम री वात।

(२) विषय की दृष्टि से—

(क) प्रेम—सोरठ री वात, वीझरै अहीर री वात, ऊमादे भटियाणी री वात, ढोला मारवणी री वात, पंमै घोर अन्धार री वात, जलाल गहाणी री वात, राणै खेतैरी वात, सोना री वात, रायधण भाटी री वात।

(ख) वीर—कूंगरै बलोच री वात, जगदे पंवार री वात, नाराइणदास-मीढा खां री वात, सोनिगरै मालदे री वात, राव चूंडे री वात, गौड़ गोपालदास री वात, गोरा बादल री वात, वात खडगल पुंवार री, छाहड़ पंवार री वात, राजा प्रिथीराज चौहाण री वात।

(ग) हास्य—च्यार मूरखा री वात, गोदावरी नदी रै जोगी री वात, खुदाय बावली री वात, बिसनी बे-खरच री वात, मामै भाणेज री वात, वीरबल री वात, राजा भोज खाफरै चोर री वात।

(घ) शांत—रावल मलीनाथ पथ मे आयौ तैं री वात, राजा नक्षत्र जातीक अर विक्रमादीत री वात, राजा भोज री पनरमी विद्या री वात, भाडण गांम रै पीर री वात, रामदास वैरावत री आखड़ियां, रामदे तुंवर री वात।

(३) भाषा की दृष्टि से—

(क) राजस्थानी—नागौर रै मामले री वात, खीवै वीजे धाड़वी री वात, रायसिंह खीचावत री वात, सूरा अर सतवादिया री वात, नक्यूं हरै नक्यूं सैखै तैं री वात, आय ठहको भाहिमै तै री वात, साई री पलक खलक वसै तै री वात, हाहुल हमीर भोगै राजा भीम सूं जुध कियो तै री वात।

(ख) उर्दू मिश्रित—कुतवदी साहिजादै री वात, देहली की वात, वहलिमा की वात, लुकमान हुकीम की अपणै बेटे कूं नसीहृत ।

(ग) व्रजभाषा मिश्रित—नासिकेत री कथा, पूरणमासी री कथा ।

(घ) गुजराती मिश्रित—अन्जना सती नी वात ।

(४) रचना प्रकार की दृष्टि से—

(क) गद्यात्मक—सूरिजमल हाडे री वात, राजा करणसिहजी रे कवरा री वात, राव रिणमल खाबड़ियै री भावना, सिखरो वहेलवै रहै तैं री वात।

(ख) गद्य-पद्यात्मक—रतना हमीर री वात, सदैवछ सावलिग री वात, नागजी नागमती री वात, पना वीरमदे री वात, ससिपून्यूं री वात, लैले–मजनूं री वात ।

(ग) पद्यात्मक—विद्या विलास चौपई, नल–दमयन्ती चौपई, शनिश्चर जी की कथा, चित्रसेन पद्मावती चौपई, गोराबादल चौपई, ढोला मारवणी चौपई ।

(५) शैली की दृष्टि से—

(क) घटनात्मक—पातिसाह औरङ्गजेब री हकीमत, जैपुर मे सैव वैष्णवां रो झगड़ो हुयो तैंरो हाल ।

(ख) वर्णनात्मक—खीची गंगेव नीबावत रो वैपौरौ, लूणसाह री वात रो वखाण ।

(ग) विचारात्मक—माघ पिंडत, राजा भोज, डोकरी री वात, जसनाथ जाट री वात ।

(६) उद्देश्य की दृष्टि से—

(क) व्यक्ति चित्रण—हरराज रै नैणा री वात, हरदास ऊहड री वात, ऊदै उगणावत री वात, महाराज पदमसिंह री वात ।

(ख) समूहदर्शन—भायला री वात, बून्देला री वात, साचोर रै चहुवाणां री वात, गढ बाधव रै धणिया री वात, भाटिया री वात ।

(ग) समय व स्थान विशेष का वर्णन—राव बीकै बीकानेर वसायो तै समै री वात, रा उदैसिंह उदयपुर वसायौ तै समै री वात, नरवद सतावत सुपियारदे लायौ तै समै री वात, अणहलवाड़ा पाटण री वात, जेसलमेर री वात ।

वात साहित्य की कुछ अपनी निजी विशेषताएं भी है जिनकी सूक्ष्म आलोचना किए

बिना राजस्थानी साहित्य के इस प्रधान अंग का पूर्ण परिचय प्राप्त नहीं हो सकता। किन्तु इसके पहिले हमको पक्षपात रहित होकर यह बात सोच लेनी चाहिये कि हम आज से ३०० वर्ष पहले लिखे हुए प्राचीन साहित्य की चर्चा कर रहे है। अतः आधुनिक कहानियो के विशाल क्षेत्र में होने वाले सूक्ष्म-तत्वों के चित्रण पात्रों के वैज्ञानिक चरित्र लेखन तथा कहानी-लेखक के विस्तृत अध्ययन की सारगभित मार्मिक उक्तियो का अस्तित्व यहां न होगा। पर फिर भी पाश्चात्य-साहित्य की इस भड़कती हुई वेश भूषा से परे, बीसवी शताब्दि के यान्त्रिक जीवन की कटु सच्चाइयो से भरे अन्वेषणों से निर्लिप्त, राजस्थानी बातो ने 'राजा रानी' की प्राचीन कहानियो के उसी विशुद्ध भारतीय वातावरण का झीना परिधान पहिन रक्खा है तथा इनके अन्तःकरण मे देश प्रेम और आत्मगौरव पर जीवन लुटा देने वाले वीरात्माओं का उबलता हुआ रक्त अब भी वेगपूर्ण गति से संचरण कर रहा है।

घटना-बाहुल्य इनकी सब से पहली विशेषता है। राजस्थानी लेखकों ने पहले पहल बात लिखना नही पर कहना सीखा था। अतः सुनने वाले के लिए यहां सामग्री अधिक है पढ़ने वाले के लिए कम। पढ़ने वाले को ऐसा ही अनुभव होता है मानों वह किसी पुराने चारण या भाट के मुख से स्वयं सुन रहा हो। यही कारण है कि इन बातों में पाठकों को मंत्रमुग्ध करने की क्षमता है। यहां एक के बाद दूसरी घटना चलचित्र की घूमती हुई तस्वीरो की भाँति आती और चली जाती है। सम्पूर्ण जीवन काल में व्याप्त होने वाले जिस घटना समूह को लेकर हिन्दी लेखक उपन्यास लिखने बैठते है वे सब घटनाएं राजस्थानी बात का कहने वाला अपनी बात मे बड़े मजे से कह जाता है। इसके विपरीत वर्णनात्मक कहानियो मे कहने वाले की दृष्टि इतनी पैनी हो गई है कि वह अत्यन्त सूक्ष्म तत्वो का निर्देश करना भी नही भूला है। जहां मृगया का वर्णन हो रहा है, वहां एक-एक क्षण के परिवर्तन के सुन्दर चित्र है। जहां युद्ध का चित्रण हो रहा है, वहाँ किस सिपाही ने कितने वार किये, किस वीर के शरीर पर कितने घाव लगे तथा किसने किससे और किसने किससे युद्ध किया आदि छोटी से छोटी बात का उल्लेख भी किया गया है। इसका प्रधान कारण यही है कि हमारे बात कहने वालो को समय की कमी न थी। जहाँ विषय सरस होता था वहाँ अपनी वाक्शक्ति के प्रभाव से तथा मार्मिक वार्तालापों के संयोजन से वे उसे और भी मनोरंजक बना दिया करते थे। पर जहाँ विषय स्वयं शुष्क होता था वहाँ वे भी अन्य बातो से उदासीन होकर घटनाओ का सीधा सादा वर्णन मात्र कर देते थे।

उक्त दोनो प्रकार की रचनायें ही यहाँ प्रचुर परिमाण मे उपलब्ध है। एक बात वह है जिसमें शताब्दियो का इतिवृत्त ठूंस कर भर दिया गया है, दूसरी वह जिसमे एक दिन मे घटित होने वाली बातों का अत्यन्त विशद वर्णन है। 'पंवाराँ री उतपत' तथा 'खीचौं गंगेव नींबावत रो बेपौरौ' नामक बातें इस विषय के सर्वोत्तम उदाहरण है।

क्लिष्टता के अनास्तित्व के साथ-साथ छोटे-छोटे वाक्यों की योजना से राजस्थानी वातों का वर्णन अत्यन्त मधुर हो गया है। यहां कहानी और उपन्यास पढ़ने के लिए भाषा के पर्याप्त ज्ञान की आवश्यकता नही, खोज-खोज कर रक्खी हुई संस्कृत शब्दावलो के कारण आ जाने वाली संदिग्धता का प्रश्न यहां नही, केवल साधारण बोल चाल की भाषा मे कही हुई इन वातों का रसास्वादन आबालवृद्ध सभी कर सकते है। इस विशेषता का एक नमूना देखिये।

"वरसाले रा दीह छै। दीवाण सिकार चढिया छै। हल वहै छै, भाद्रवो मास छै। खातिण भातो ले ज्यावै छै। दोइ पाडी छै, सू बिन्है हाथे पकड़ी छै, लियाँ जावै छै, पाड्याँ नाचै छै, थेई-थेई कर्त्याँ जावै छै, भातो माथै छै, बे–परवाह चली जावै छै।'- (राणै खेतै री वात)

वात के सुबोध होने के अतिरिक्त इस पद-योजना से वर्णन मे एक विचित्र सरसता आ जाती है। इसके बल पर हम यह सिद्ध करने का भी प्रयत्न कर सकते है कि गंभीर भावों की आलोचना तथा सूक्ष्म तत्वो का चित्रण करने के लिए छोटे-छोटे सरल वाक्य भी कितने उपयुक्त है।

'आगै जाल रो रूंख हुतौ, ओथ जाइनै ऊभा रहिया। कहियो, ओ ठाकुर सुणै, अै लोक सुणै, ओ नीलौ रूंख छै, जे छै मास ताई नायी तौ तै कहियो न मै सुणियो मै कहियो न तैं सुणियो, वाचा अवाचा छै। ताहरा वीझाणंद आघौ हालियो, सैणी पाछी चाली।" (सयणी)

प्रकृति-चित्रण की अपूर्व छटा के लिये नीचे लिखी पंक्तियाँ देखिये—

"वरखा रितु लागी, विरहणी जागी। आभा झरहरै. वीजाँ अवास करै, नदी ठेवा खावै, समुद्रे न समावै। पाहाडाँ पाखर पड़ी, घटा ऊपड़ी। मोर सोर मडै, इंद्र धार न खंडै। दादुर डहडहै, सावण भादुवै री संधि कहै। इसौ समईयौ वण रह्या छै। आभो गाजै, सारंग वाजै। द्वादस मेघ नै दुवो हुवो सू दुखियारी री आँख हुवो। झड़ लागो, प्रिथी रो दलद्र भागो।

बरखा मंडनै रही छै, विजली झिलोमल करनै रही छै। बादला झड़ लायो छै। सेहरां सेहरा बीज चमकनै रही छै जाणे कुलटा नायका घर सूं नीसर अंग दिखाय दूसरे घर प्रवेस करै छै। मोर कुहकै छै। भाखरा रा नाला बोलनै रह्या छै, पाणी नाडा भरनै रह्या छै। चोटड़ियांल डहकनै रही छै। वनसपती सूं वेला लपटनै रही छै, परभात रो पोहर छे। गाज अवाज हुयनै रही छै। जाणे घटा घणे हरख सूं जमी मिलण आई छै। (बेपौरो)

वर्णन परम्परागत होते हुए भी सरसता मे कम नही। इसी शैली के अन्तर्गत किये हुए व्यक्ति-चित्रण एवं वातावरण के चित्रण भी अत्यन्त सजीव हुए है। दो तीन वाक्यों मे ही सम्पूर्ण व्यक्तित्व का रेखाचित्र हमारे सामने उतर आता है—

"जेसल देस रै देस मांहे जोगराज चारण बसै। बडो चतुर, होसनाइक, बडा रूपक जोडै। मोटौ चारण। नामजादीक। साह-सिकै भलो। रूप भलौ। सू उदास रहै। घरै अस्त्री स्वरूप नही, गुण नही, तियै करि उदास रहै।" (जोगराज चारण)

वातावरण के सौन्दर्य के लिए युद्ध-क्षेत्र मे पड़े हुये घायल सैनिक का चित्रण देखिये--

सांवतराय री चिता सूं पांवड़ा दोयसैक माथै घावां सूं मार हुआ माराज बैठा है, घायलियै सिंघ ज्यूं घूमै है। सावचेत हुवे छै जद तो एक-दोय पिंडरु धर रा भरै छै। रुधर री धारा सरीर मांय सूं प्रवाल री सीकां वहनै रही है। एक आंगली टिकै जेती जागा घावां सूं साबत रही नही है। बेचेतै बैठा घूमै है। वा ढाल तलवार हाथां छिटक पड़ी है। एक कटारी कमर मैं बध रही है। (पदमसिंहजी री वात)

प्रतिपाद्य विषय, भाषा और शैली की सरलता तथा गंभीरता के साथ-साथ इन बातों में एक रोमान्चक तत्व का अस्तित्व भी मिलता है। काल्पनिक तथा ऐतिहासिक दोनो ढंग की बातों मे ही इसका उन्मादकारी सम्मिश्रण है। कही-कही यही तत्व अतिरंजित किया जाकर अप्राकृतिक बन जाता है परन्तु अधिकतर तो इसके कोमल स्पर्श से वात में एक नूतन मादक स्फुरण-सा हो उठता है।

(६) लोक साहित्य

मौखिक साहित्य भी हमारे पास बहुत अधिक हैं। इस साहित्य की सर्व प्रथम विशेषता इसके गीतो मे है। हमने सैकड़ो की संख्या मे ऐसे गीत देखे और सुने हैं जो लगभग २५०-३०० वर्ष तक के पुराने हैं। हमारी स्त्रियो ने पीढ़ियो से इस निधि को उसी रूप मे सम्भाल कर रखा है और आजतक हमारे घरों मे वे उसी रूप में गाए जाते हैं। ये गीत कोई विषय विशेष के नही बल्कि सभी विषयों के, सभी अवसरों के और सभी प्रकार के है। इनमे तीज, गणगौर, होली, दीवाली, रूपचौदस इत्यादि त्योहारों के गीत, गोगा, रामदेव, शीतला, भैरूंजी आदि देवताओ के गीत; जापा, सगाई और विवाह के गीत, संयोग, वियोगादि प्रेम के गीत, हरजस, शिशुलोरियां, लड़कियों और स्त्रियो के गीत आदि सैकड़ों प्रकार और विषयो के गीत हैं। भाषा की सरसता और भावनाओ की सुन्दर अभिव्यक्ति का जितना अच्छा आभास हमारे लोक गीतों में है उतना अन्यत्र नही। चारण ने अपने गीतों मे अतिशयोक्तिपूर्ण चाटूक्तियों राजपूत का गुणगान भले ही किया हो, अनुप्रासों के चक्कर मे काव्य लेखको ने पढे लिखे पाठक को चकित भले ही कर दिया हो, पर उसके हृदय को छूकर मादक नर्तन करने वाली सुन्दर साहित्य-लहरियां जन-साधारण द्वारा रचे हुए और जन-साधारण द्वारा गाए जाने वाले इन गीतों मे ही मिलेगी। हमारी स्त्रियों की सुकुमार कल्पनाओ और स्वभाव

मधुर भाषा ने इस अनोखे काव्य की सृष्टि कर राजस्थानी साहित्य को कृतकृत्य कर दिया है। मौखिक साहित्य की दूसरी वस्तुएं स्फुट दोहे, मुहावरे, कहावतें, चुटकले, वार्तें और छन्दवद्ध कथाएं हैं। उनका संग्रह हमारी भाषा के रूप निर्माण के लिए अत्यन्त आवश्यक है। छन्दवद्ध कथाओं मे डूंगजी-जंवारजी, पावूजी और तेजा जाट की कथाएं बहुत सुन्दर हैं। इनको संपादित करने का बीड़ा शीघ्र ही उठाया जाना चाहिए। ग्रामीण समाज के भाषा ज्ञान से परिचित कराने के लिए ये काव्य विशेष लाभप्रद सिद्ध हो सकते हैं।

राजस्थानी भाषा के प्रतिनिधि साहित्यकार

राजस्थानी भाषा के समस्त साहित्य को दो भागों मे विभक्त किया जा सकता है। एक वह जो डिंगल में उपलब्ध होता है और दूसरा वह जो साधारण राजस्थानी मे लिखा गया है। जैसा कि प्रो० नरोत्तमदास स्वामी ने 'ढोला मारू रा दूहा' के सम्पादकीय मे उल्लेख किया है, आरम्भ मे साधारण राजस्थानी और डिंगल मे कोई अन्तर नही था, किन्तु आगे चल कर डिंगल स्थिर हो गई। कवि लोग जान बूझ कर ऐसे शब्दों का प्रयोग करने लगे जो साधारण बोल चाल की राजस्थानी से पृथक होते थे और इस तरह धीरे-धीरे उसका एक अलग स्वरूप अस्तित्व मे आ गया।

डा० मोतीलाल मेनारिया के मतानुसार डिंगल शब्द लगभग उन्नीसवी शताब्दी से प्रयुक्त होने लगा है। उनका कथन है कि सम्बत् १८७१ मे लिखी गई जोधपुर के कविराज बाकीदास की 'कुकवि बतीसी' नामक रचना मे इसका प्रयोग प्रथम बार प्राप्त होता है।

डीगलिया मिलियां करे, पिंगल तणौ प्रकाश।
संस्कृती ह्वै कपट राज, पिंगल पढियां पास॥

राजस्थानी के इस साहित्यिक रूप का नाम डिंगल क्यों पड़ा, इसके बारे मे विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत हैं। डा० तेस्सितोरि इसे गंवारू का पर्याय मानते है। उनकी धारणा है कि ब्रज भाषा के प्रांजल स्वरूप की तुलना मे राजस्थानी का यह रूप असंस्कृत जान पड़ता था, इसलिए इसे डिंगल के नाम से सम्बोधित किया जाने लगा। किन्तु डिंगल जैसी स्वस्थ और समृद्ध भाषा के लिये यह धारणा उपयुक्त प्रतीत नही होती। श्री गजराज ओझा का मत है कि डिंगल में डकारान्त शब्दो का बाहुल्य होने के कारण इसका नाम पिंगल के साम्य पर डिंगल रख दिया गया।

एक अन्य विद्वान् के अनुसार इसकी उत्पत्ति डीग शब्द से बताई गई है। उनका कथन है कि चारणो द्वारा राजपूत राजाओं की वीरता और शौर्य का अति रंजित (डीग धरा) वर्णन इस भाषा मे अधिक होने के कारण यह डिंगल कहलाने लगी। इसी प्रकार और भी तरह तरह के अनेक मत प्रचलित है। अधिक सम्भावना इसी बात की हो सकती है कि ब्रज या ब्रज मिश्रित भाषा की कविता जो पिंगल के नाम से जानी जाने लगी थी, उसके समानान्तर चारण–भाटो की वीर रसात्मक कविता नाम साम्य के आधार पर डिंगल कहलाने लग गई होगी।

साधारण राजस्थानी के अन्तर्गत आम बोलचाल की राजस्थानी और ब्रज मिश्रित पिंगल की रचनाओ को रखा जा सकता है।

राजस्थानी के इन दोनो ही रूपों मे प्रचुर साहित्य उपलब्ध होता है। उसके विस्तृत विवरण के लिए तो सम्भवतः कई हजार पृष्ठो के बीसियों ग्रन्थ भी पर्याप्त नही होगे। अतः यहां केवल नामो की सूची देने की अपेक्षा कतिपय बहुविश्रुत और प्रसिद्ध साहित्यकारों और उनके साहित्य का ही संक्षिप्त विवरण काल क्रम के अनुसार प्रस्तुत किया जा रहा है।

शारङ्गधर

इनका आविर्भाव १४ वी शताब्दी के आसपास हुआ था। शारङ्गधर संहिता नामक प्रसिद्ध आयुर्वेद का ग्रन्थ इन्ही का रचा हुआ बताया जाता है। इन्ही का रचा हुआ दूसरा ग्रंथ शारङ्गधर पद्धति है। हम्मीर रासो नामक ग्रन्थ भी इन्ही का रचा हुआ बताया जाता है। इस ग्रंथ मे रणथम्भोर के राजा हम्मीर और मुसलमान शासक अलाउद्दीन की सेना के बीच हुये युद्ध का ओजस्वी वर्णन किया गया है। नमूने के तौर पर इनकी कविता का एक अंश उद्धृत किया जाता है।

ढोला मारिय ढिल्लि महं मच्छिउ मच्छ सरीर।
पुर जज्जला मंतिवर चलिअ वीर हम्मीर॥
चलिअ वीर हम्मीर पाअधर मेइणि कपंई।
दिगमग णह अंधार धूलि सुररह आच्छाइहि॥
दिगमग णह अंधार आण खुरसाणुक उल्ला।
दरिमरि दमसि विपक्ख मारू ढिल्ली मह ढोल्ला॥

दलपत विजय

इनका रचा हुआ खुमाण रासो नामक ग्रंथ है। इस ग्रन्थ मे बप्पारावल से लेकर महाराणा राजसिंह पर्यन्त मेवाड के शासको का वृतान्त प्रस्तुत किया गया है। खुमाण-रासो आठ खण्डों मे विभाजित है और इसकी भाषा इस प्रकार की है :—

आभ भाव अंबाव, भगति कीजे भारत्ति
जाग जाग जगदंब, सत सानिध सकत्ति

प्रसन होय सुरराय, वयण वाचा बर दीजै ।
बालक बेलें बांह, प्रीतभर प्यालो पीजै ।।
महाराज राज-राजेश्वरी, दलपति सूं कीजै दया ।
धन मौज महिर मातंगिनी, माय करो मोसूं मया ।।
भृकुटि चंद मलहल्ल गंग खलहले समुज्जल ।
एकदन्त उज्जलौ, सुंड ललबलै रुंड गल ।।
पुहप धूप प्रम्मलै, सेस सलबहै जीह लभ ।
घूम्र नेत्र पर जलै, अंग अक्कलै अतुल बल ।।
यम बले विघन दालिद अलग, चमर ढलैं उज्जल कमल ।
सुंडाल देव रिध सिध दियण, सुमर दल्ल गणपति मवल ।।

नरपति नाल्ह

बीसलदेव रासो नामक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ के रचियता नरपति नाल्ह विग्रह राज चतुर्थ उपनाम बीसलदेव के समकालीन थे। बीसलदेव रासो में चार खण्ड हैं। यह काव्य लगभग दो सहस्त्र चरणो मे लिखा गया है। रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास मे इसकी कथा वस्तु का सार इस प्रकार दिया है:—

खण्ड १—मालवा के भोज परमार की पुत्री राजमती से सांभर के बीसलदेव का विवाह होना।

खण्ड २—बीसलदेव का राजमती से रूठ कर उड़ीसा की ओर प्रस्थान करना तथा वहां एक वर्ष रहना।

खण्ड ३—राजमती का विरह वर्णन तथा बीसलदेव का उड़ीसा से लौटना।

खण्ड ४—भोज का अपनी पुत्री को अपने घर लिवा ले जाना तथा बीसलदेव का वहां जाकर राजमती को चित्तौड़ लाना।

नरपति नाल्ह की कविता का एक नमूना देखिये—

माणिक मोती चउक पुराय ।
पाव पषाल्या राव का ।।
राजमती दीई बीसलराव ।
हुई सोपारी मनि हरष्यो छई राव ।
बाजित्र बाजइ नीसाणो घाव ।।
गड मांहि गुडी उछली ।
घरि घरि मंगल तोरण च्यारी ।।१।।

चन्द

हिन्दी के आदिमहाकाव्य पृथ्वीराज रासो के रचयिता चन्दबरदाई का जीवन चरित्र सम्भवतः सबसे अधिक विवादास्पद और संदिग्ध है। चंद के बारे मे यह बहुत

प्रसिद्ध है कि वह दिल्ली के अन्तिम हिन्दू सम्राट महाराज पृथ्वीराज के सामन्त और राजकवि थे। ये न केवल कुशल कवि ही थे अपितु पृथ्वीराज के अनन्य सखा और सामन्त भी थे। पृथ्वीराज रासो ढाई हजार पृष्ठो का वृहद् ग्रन्थ है, जिसके उत्तरार्द्ध के वारे में यह कहा जाता है कि उसकी रचना चन्द के पुत्र जल्हण ने की थी। रासो मे एक स्थान पर ऐसा उल्लेख भी मिलता है।

"पुस्तक जल्हण हाथ दै चलि गज्जन नृप काज"

पृथ्वीराज रासो की प्रमाणिकता के विषय मे विद्वानो मे वहुत मत भेद हैं, क्योकि ऐतिहासिक तथ्यो के साथ इस ग्रन्थ मे वर्णित घटनाओ का कोई ताल मेल नही वैठता। भापा की विविधता भी इसके प्रामाणिक होने मे सन्देह उपस्थित करता है। यहां हम इस ग्रन्थ के वारे मे केवल दो ही तथ्यों का जिक्र करना चाहेंगे। एक तो यह कि पृथ्वीराज रासो डिंगल का नही अपितु पिंगल का ग्रन्थ है और दूसरा यह कि इसका जो स्वरूप प्राप्त होता है उससे उसकी रचना किसी एक कवि द्वारा हुई हो ऐसा अनुमान नही किया जा सकता। फिर भी इतना तो मानना ही पड़ेगा कि यह हिन्दी का सर्व प्रथम उपलब्ध महाकाव्य है जिसमे काव्य का सौन्दर्य असाधारण कोटि का है। पृथ्वीराज रासो के पद्मावती समय के कुछ पद्य उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत हैं:—

मनहू कला ससमान कला सोलह सौ वन्निय।
वाल वैस, ससि तासमीप अम्रित रस पिन्निय॥
विगति कमल स्त्रिग, भवर, वेनु, खंजन, मृग लुट्टिय।
हीर, कीर, अरु विंव, मोति नषसिष अहि घुट्टिय॥
कुट्टिल केस सुदेस पोह परिचियत पिक्क सद।
कमल गंध, वयसंध, हंसगति चलति मंद मद॥
सेत वस्त्र सोहै सरीर नष स्वाति बूंद जस।
भमर भवहि भुल्लहि सुभाय मकरंद वास रस॥

शिवदास

चारण जाति मे उत्पन्न इस कवि ने "अचलदास खीची री वचनिका" नामक एक छोटे से ग्रन्थ की रचना की थी। इसमे मांडू के वादशाह और गागरोनगढ़ के खीची राजा अचलदास की लड़ाई का चित्रण है। इस ग्रन्थ की भापा डिंगल है और शैली पुरानी और सीधी सादी है। डा० रामकुमार वर्मा के मतानुसार इस ग्रन्थ का रचनाकाल सम्वत् १५१६ है। वचनिका के कुछ दोहे यहा प्रस्तुत किये जाते हैं:—

एकणि वंनि वसंतडा, एवड अंतर काई।
सीह कवड्डी ना लहै, गैवर लक्खि विकाई॥१॥
गैवर गलै गलथीयौ, जहं खंचै तहं जाई।
सीह गलथ्थण जे सहै, तो दइ लक्ख विकाई॥२॥

गणपति

इन्होने माधवानल कामकंदला के लोकप्रिय प्रेमाख्यान को मारवाड़ी दूहों मे प्रस्तुत किया था। इनका ग्रन्थ "माधवानल प्रबन्ध दोग्धवन्ध कवि गणपति कृत" है, जिसकी रचना इन्होने नर्मदा के तट पर सम्बत् १५८४ मे की थी।

खिडियो जग्गो

इन्होंने "वचनिका राठौर रतनसिंहजी री महेस दासौत की खिडिये जगेरी कही" नामक प्रसिद्ध काव्य ग्रन्थ की रचना की थी, जिसमे जोधपुर नरेश जसवन्तसिंह और शाहजहां के विद्रोही पुत्र औरंगजेब और मुराद के बीच अवन्तिका के युद्ध स्थल मे संबत् १७१५ में हुये युद्ध का वर्णन किया गया है। इस युद्ध मे रतलाम के रतनसिंहजी ने अपना आत्मोसर्ग किया था। इसलिये उन्ही के नाम पर पुस्तक का नामकरण किया गया है।

सूजाजी

बीठू शाखा के इस चारण कवि ने राव जेतसी रो छन्द नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की है। यह ग्रन्थ बीकानेर के राव जेतसी की प्रशंसा मे लिखा गया है। बाबर के पुत्र कामरान द्वारा बीकानेर पर चढ़ाई किये जाने पर राव जेतसी ने अपने जिस असाधारण शौर्य और पराक्रम का परिचय दिया उसी की प्रशस्ति इस काव्य में गाई गई है। इस युद्ध के वारे मे जहां मुसलमान इतिहासकार मौन रहे हैं वहां सूजाजी ने इसका वर्णन किया है। इस दृष्टि से इस पुस्तक का न केवल साहित्यिक महत्व है अपितु ऐतिहासिक महत्व भी है। ग्रन्थ का रचना काल सम्भवतः १५९१ और १५९८ के बीच अनुमानित किया जाता है। ग्रन्थ की भाषा और शैली का एक उदाहरण लीजिये—

धडहडे ढोल धूजे धरत्ति, पड़ियालगि बरसे खेड़पत्ति।
बीकाहर राजा ईद बग्गि, खाफरां सिरै खिविया खडग्गि॥
पतिसाह फौज फूटन्ति पालि, ब्रह्ममंड जैत गाजे विचालि।
अम्बहर जैत बरसे अबार, धुडु किया मौर मुहि खग्गधार॥

हरराज

इस कवि ने सम्भवतः १६०७ मे ढोला मारवणी चउपही नामक ग्रन्थ जैसलमेर के यादव नरेश के मनोरंजन के लिये लिखा था। ग्रन्थ की कथा प्रेमाख्यानक है और उसमें इतिहास की अपेक्षा कल्पना तत्व का प्राधान्य है।

मीराबाई

भारत की महिला कवित्रियों मे सम्भवतः मीराबाई का नाम ऐसा है जो दूर दूर तक बहुविश्रुत है। कृष्ण की आराधिका इस कवियित्री का जन्म सम्भवतः १५१५

के आसपास मेड़ता के राठौड़ घराने मे हुआ था। लगभग १९ वर्ष की अवस्था मे इनका विवाह मेवाड़ के राजा भोजराज के साथ हुआ। किन्तु विवाह के कुछ वर्ष बाद ही इनके पति का देहान्त हो गया। पति के स्वर्गवास के पश्चात् यह सासारिक जीवन से विरक्त हो गई और भजन कीर्तन तथा कृष्ण आराधना मे संलग्न रहने लगी। परिवार के लोगो द्वारा इनकी भक्ति साधना मे अनेक विघ्न भी उपस्थित किये गये किन्तु उनका इन पर कोई प्रभाव नही पड़ा। मीरा ने किसी प्रबन्ध काव्य की रचना नही की। उन्होने स्फुट भक्ति पद ही लिखे तथा ये पद अपनी सहजंता, सरलता, भावुकता और संगीतात्मकता के कारण इतने लोकप्रिय हुये कि न केवल राजस्थान अपितु मालवा और गुजरात के लोककण्ठ मे भी वे रम गये। मीराबाई की भाषा आम फहम राजस्थानी है जिस पर ब्रज भाषा और गुजराती का भी प्रभाव है। यहा उनके दो पद नमूने के रूप मे प्रस्तुत किये जाते है:—

म्हारें चाकर राखोजी।
चाकर रहस्यूं बाग लगास्यूं नित उठ दरसन पास्यूं
वृन्दावन की कुंज गलिन मे तेरी लीला गास्यूं।
हरे हरे सब बाहि बनाऊं बिच बिच राखूं बारी
सावलिया के दरसन पाऊं पहिरि कुसुम्भी सारी।
योगी आया योग करन कूं तप करने सन्यासी।
हरि भजन कूं साधू आये वृन्दावन के वासी।
मीरा के प्रभु गहिर गंभीरा हृदय रहो जी धीरा,
आधी रात प्रभु दरसन देहै प्रेम नदी के तीरा।

मै तो गिरिधर के घर जाऊं।
गिरिधर म्हारो साचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊं।
रैन पड़े तब ही उठि जाऊं, भोर भये उठि आऊं।
रोज रोज वाके संग खेलूं, ज्यो त्यो ताहि रिझाऊं
जो पहिरावे सोई पहिरूं जो दे सोई खाऊं।
मेरी उनकी प्रीति पुरानी उन बिन पल न रहाऊं।
जहं बैठावे तितहूं बैठूं, बेचे तो बिक जाऊं।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर बारबार बलि जाऊं॥

ईसरदास

इनका जन्म सम्भवत: १५९५ मे जोधपुर राज्य के भाद्रेस नामक गाव मे हुआ था। इनके जीवन की अनेक चमत्कार पूर्ण कथाएं राजस्थान मे प्रचलित है। इनमे से सांगा गौड़ नामक चारण से उसकी मृत्यु के पश्चात् भी नदी मे से आवाज देकर कम्बल की भेंट लेने की कथा अत्यधिक लोक प्रिय है। ईसरदास ने कुल मिला कर लगभग

१०-१२ ग्रन्थों की रचना की। इनमें से हरिरस और हालां झाला री कुण्डलियां बहुत प्रसिद्ध है। हालां झाला री कुण्डलिया वीर रस का अत्यन्त उत्कृष्ट ग्रन्थ है जिसमे ४२ कुण्डलियां संग्रहीत हैं। नमूने के तौर पर कुछ पद्यांश लीजिये—

धीरा धीरा ठाकुरां गुम्मर कियो मजाह ।
महुंगा देसी झूंपड़ा जै घरि हौसी नाह ।।
नाह महुंगा दियण झूंपड़ा त्रिमैव नर ।
जाबसो कड़तला केमि जरसौ जहर ।।
रुक-हथ पैखि सौ हथ जस राज रा ।
ठिवंता पांव धीरा दीयौ ठाकुरां ।।

पृथ्वीराज

बीकानेर के राजा रार्जसिंह के अनुज कवि पृथ्वीराज का जन्म सम्वत् १६०६ मे हुआ था। वे न केवल काव्य कौशल में ही श्रेष्ठ थे बल्कि असाधारण. योद्धा भी थे। उनका रचा हुआ बेलि क्रिसन रुकमणि री राजस्थानी मे शृंगार रस का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है। बेलि की रचना सम्भवतः १६३७ मे हुई थी। उसकी कथा वस्तु रूकमणि हरण, कृष्ण रुक्मणि परिणय, विलास और प्रद्युम्न जन्म से सम्बन्धित है। बेलि मे कुल मिला कर ३०५ पद्य हैं जो डिंगल के प्रसिद्ध छन्द बेलियो गीत मे लिखे गये है। बेलियो गीत की विशेषता यह होती है कि उसमें चार चरण होते है। दूसरे और चौथे चरण की रचना समान होती है और उसमें तुकान्त भी रहता है। प्रथम और तृतीय पंक्तियो की रचना भिन्न प्रकार की पाई जाती है। प्रथम पंक्ति में १८ और तृतीय पंक्ति में १६ मात्राएं तथा द्वितीय और चतुर्थ पंक्तियों मे १३, १४ या १५ मात्राएं होती है। कवित्व की दृष्टि से यह ग्रंथ इतना उत्कृष्ट कोटि का है कि डा० तैस्सितोरि ने इसे राजस्थानी साहित्य की खान का उज्जवलतम रत्न कहा है। डिंगल भाषा का सम्भवतः यह एक मात्र ग्रन्थ है जिसकी टीका संस्कृत मे उपलब्ध होती है। राजस्थान में इस ग्रन्थ का सम्मान वेद पुराण की भांति किया गया है और उसे पांचवा वेद कहा गया है। बेलि के काव्य सौन्दर्य के एक नमूने रूप मे यह छन्द देखिये। रुक्मणि के वयो विकास के वर्णन में कवि कालिदास से भी आगे बढ़ गया है।

अनि बरसि बधे ताई मास बधेई,
बधे मास ताई पहर बधन्ति ।
लखण बत्तीस बाललीला में,
राजकुंवरि द्रूलडी रमन्ति ।।

कालिदास के 'कुमार—सम्भव' मे पार्वती के वय विकास का वर्णन इस प्रकार है—

दिने दिने सा परिवर्धमाना,
लब्धोदया चान्द्रमसीव लेखा ।
पुयोष लावण्यमान विशेषाक,
ज्योत्सनान्तराणीव कलान्तराणि ॥

सांयाजी झूला

इनका जन्म सम्वत् १६३२ मे और स्वर्गवास १७०३ मे हुआ था। सायाजी श्री कृष्ण के अनन्य भक्त थे। कृष्ण भक्ति से सम्बन्धित इन्होने दो ग्रन्थ रचे हैं। पहला रुकमणि हरण और दूसरा नागदमन। रुकमणि हरण मे श्री कृष्ण और रुकमणि के परिणय का चित्रण है, जबकि नागदमन मे कृष्ण की किशोरावस्था, गोपियो का प्रेम और उनकी रासलीला तथा कृष्ण-कालिया युद्ध का वर्णन है। रुकमणि हरण की भाषा डिंगल है किन्तु उस पर यदकिंचित गुजराती का भी प्रभाव है। रुकमणि हरण के कुछ छन्द लीजिये—

प्रगट्या क्रिसन बसुदेव जादव पता
श्री हुई रुखमण राव भीमक सुता ॥१॥
विमल पिता मात कुल छात जणावियौ
लार भरतार अवतार रुखमण लियौ ॥२॥
मलमला राजहंस राजकुंवरी भली
एह छै रुखमणी रूप जुग ऊपली ॥३॥
मात पित पूत पखार वैठा मतौ
सौझियौ बाद विवाह कारण सुतौ ॥४॥
माखियौ भीम मुख जौय चवदै भवन
कुंवर वर मूझ एक सुझै क्रिसन ॥५॥
रुखमियौ जाणि घ्रत जालिणी रालियौ
भला भीकम तम्हें वर मालियौ ॥६॥

दुरसाजी

दुरसाजी का जन्म संवत् १५६२ मे जोधपुर राज्य के एक गाव मे हुआ था। ये डिंगल के बहुत समर्थ कवि थे। बादशाह अकबर के दरबार मे इनका असाधारण सम्मान बताया जाता था। दुरसाजी के वीर रसात्मक दोहे राजस्थान के लोगो की जबान पर आज भी है। उनके लिखे तीन ग्रन्थ प्रसिद्ध है। विरुद छहत्तरी, किरतार बावनो और श्री कुमार अज्जाजी नी भूचर मौरी नी गजगत। दुरसाजी के सशक्त और ओजस्वी कवित्त के कुछ दोहे प्रस्तुत है—

अकबर समन्द अथाह, तिह डूबा हिन्दू-तुरक ।
मेवाड़ौ तिण माह, पौयण फूल प्रतापसी ॥

अकबरियै इक बार, दागल की सारी दुणी ।
अणदागल असवार, रहियौ राण प्रतापसी ।।
लौपे हीदू लाज, सगपण रौपे तुरकसूं ।
आरज-कुल री आज, पूंजी राण प्रतापसी ।।
सुख हित स्याल समाज, हीदू अकबर बस हुवा ।
रोसीलौ अगराज, पजै न राण प्रतापसी ।।
अकबर पथर अनेक, के भूपत भेला किया ।
हाथ न लागो हेक, पारस राण प्रतापसी ।।

मुहणोत नैणसी

मुहणोत नैणसी सम्वत् १६६७ मे ओसवाल जाति के मुहणोत वंश मे पैदा हुए थे। इन्होने मुहणोत नैणसी की ख्यात नामक प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखा है। इस पुस्तक मे राजपूताना, गुजरात, काठियावाड़, कच्छ, मालवा, बुन्देलखण्ड और भगेलखण्ड के राजपूतो का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। राजस्थानी के गद्य साहित्य मे मुहणोत नैणसी की ख्यात का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसाद के शब्दो मे नैणसी राजपूताने के अबुल फजल है। नैणसी की दूसरी पुस्तक जोधपुर राज्य का सर्व संग्रह है, जिसमे जोधपुर राज्य के उन परगनों का विवरण है जो उस समय जोधपुर राज्य मे थे। उत्कृष्ट कोटि के इतिहासकार होने के साथ साथ नैणसी डिगल भाषा के सिद्धहस्त गद्य लेखक भी थे। उनकी गद्य रचना का एक अंश देखिये:—

डूंगरपुर सहर, ता उगवण नै दिषण बेउ तरफ भाखर छै। खोहल माहें सहर मगरा री खम्भ बसीयो छै। छोटो सो कोट छै। उठै रावल रा घर छै। गांव माहें देहुरा घणा छै। चोहटा घणा पिण हाटे उसड़ी पीढ को नही। डूंगरपुर री उत्तर दिस नुं रावल पूंजा रौ करायौ गोवरधननाथ रो बड़ो देहरो छै। गाव सूं ईसान कूंण मे रावल गैपा रो करायौ बड़ो तालाब छै। सहर रै पाछै भाखर छै। सिकार रौ आहुरवानो पिण उण हीज भाखर ऊपर छै। घणी दूर आहूखाने रै वास्ते भीत छै। सहर सूं कोस पूंण मे गागड़ी नदी छै। तिण रै टाहै रावल पूंजा रौ करायो बड़ो राज बाग छै।

वीरभाण

राजरूपक नामक डिंगल भाषा के प्रसिद्ध ग्रन्थ के रचियता वीरभाण जोधपुर राज्य के गढोई ग्राम मे सम्वत् १७४५ में पैदा हुए थे। राजरूपक मे जोधपुर के महाराजा अभयसिंह और गुजरात के सूबेदार शेर विलन्द खां के युद्ध का वर्णन है। इस युद्ध मे जो अहमदाबाद मे हुआ था, वीरभान स्वयं भी उपस्थित थे। अतः इस ग्रन्थ मे लडाई का आँखो देखा इतिवृत प्रस्तुत किया गया है। राजरूपक की भाषा का एक नमूना लीजिये :—

सुंदर भाल विसाल अलक सम माल अनोपम ।
हित प्रकास अदु हास, अरुण वारिज मुख ओपम ॥
कृपाधाम नव कंज, नयज अभिराम सनेही ।
रुचि कपोल ग्रीवा त्रिरेख, छवि वेस अछेही ॥
निरखंत संत सनमुख निजर, करण पुनीत सुप्रोत कर ।
गुणमान दान चाहै सु अहि, कवि सुग्यान औ ध्यान धर॥

जोधराज

हम्मीर रासो नामक ग्रन्थ के रचियता जोधराज कुशल कवि होने के साथ-साथ निष्णात् ज्योतिषी भी थे। हम्मीर रासो मे इन्होने हम्मीर की वंशावली तथा उनके जीवन काल की महत्वपूर्ण घटनाओ का विस्तृत वर्णन किया है। हम्मीर रासो वीर रस का ग्रन्थ है किन्तु शृंगार का भी उसमे सुन्दर पुट दिया गया है। हम्मीर रासो का एक अंश लीजिए:—

मिले वंधु दौउ धाय। बहु हरष कीन सुभाय ॥
अव स्वामि धर्म सुधारि। दोउ उठे वीर हुंकारि ॥
असमान लग्गिय सीस। मनो उमे काल सदीस ॥
इत कोप महिमा कीन्ह। हम्मीर नौन सु चीन्ह ॥
उत भीर गभरु आय। मिलि सेख के परि पाय ॥
कर तेग वेग समाहि। रहि दूहू सैन सचाहि ॥

प्रतापसिंह

जयपुर के महाराज प्रतापसिंह का जन्म सम्वत् १८२१ मे और मृत्यु सम्वत् १८६० मे हुई। ये कलावन्तो के वड़े गुण ग्राहक थे और स्वयं भी व्रजनिधि के उपनाम से कविता लिखते थे। काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा इनके काव्य ग्रन्थो का संग्रह व्रजनिधि ग्रन्थावली के नाम से प्रकाशित किया जा चुका है, जिसका सम्पादन पुरोहित हरिनारायण विद्याभूषण ने किया है। व्रजनिधि की कविता का एक अंश लीजिये:—

राधे वैठी अटारिया, झाकत खोलिकिवार ।
मानी मदन गढ़ तै चली, द्वै गोली इकसार ॥
द्वै गोली इकसार, आनि आखिन मे लागी ।
छेदे तन-मन-प्रान, कान्हकी सुधि बुधि भागी ॥
व्रजनिधि है बेहाल, विरह बाधा सौ दाधे ।
मद मंद मुसकाइ, सुधा सौ सीचति राधे ॥

बांकीदास

इनका जन्म जोधपुर राज्य के भडियावास नामक ग्राम मे सम्वत् १८२८ मे हुआ था। ये महाराजा मानसिंह के वड़े कृपा पात्र थे। डिंगल भाषा के उन विरल

कवियों में से इनका नाम लिया जा सकता है जो अपने कवित्व के कारण अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखे जाते है। इन्होने कुल मिला कर लगभग २६ ग्रन्थ लिखे। काशी नागरी प्रचारिणी द्वारा 'बाकीदास ग्रन्थावली' का प्रकाशन हो चुका है। बांकीदास न केवल वीर रस के कवि थे अपितु नीति विषयक साहित्य भी इन्होने प्रचुर मात्रा मे लिखा है। नीति विषयक कुछ दोहे यहां प्रस्तुत है।

नरकायर आंणै नही, लूंण लिहाज लगार।
धोले दिन छोडै धणी, अणी मिलै उण बार ॥१॥
बादल ज्यूं सुर धनुष बिण तिलक बिना दुजपूत।
बनी न सापै मौड़ बिण, घाव बिना रजपूत ॥२॥

सूर्यमल

वंश भास्कर के सुप्रसिद्ध लेखक सूर्य मल का जन्म सम्वत् १८७२ में बूंदी मे हुआ था। वंश भास्कर बूंदी राज्य का पद्यात्मक इतिहास है जिसमे वर्णित घटनाएं तथ्यो पर आधारित हैं। इनका दूसरा अपूर्ण ग्रन्थ वीर सतसई है। बलवन्त विलास और छन्दोमयूख नामक दो अन्य ग्रन्थ भी इन्होंने लिखे थे। वीर रस के कवियों मे सूर्यमल की टक्कर का कवि सम्भवतः दूसरा नही हुआ। उनकी वीर रस की कविता का एक नमूना लीजिए:—

दुव सैन उदग्गन खग्ग समग्गन अग्ग तुरग्गन बग्गलई ॥
मचि रंग उतंगन दंग मतंगन सज्जि रंनगन जंग लई ॥
लगि कंप लजाकन भीरु भजाकन बारु कजानन हाक बढ़ी ॥
जिम मेह ससंबर यो लगि अंबर चंड अडंबर खेह चढ़ी ॥

बख्तावरजी

इनका जन्म सम्वत् १८७० मे और मृत्यु १९५१ मे हुई। इनका सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ केहर प्रकाश हैं, जिसमे कमल प्रसन्न नामक एक वेश्या और उसके प्रेमी केशरीसिंह की प्रणय लीला का वर्णन है। केहर प्रकाश के काव्य सौन्दर्य का एक नमूना लीजिए:—

कंवल उवर सी आत आत मे कहात।
परस्थानी परियो सी सहेल्याँ ले साथ ॥
जरकस पट जेवर झलामल के जोत।
हेरी जात चारो ओर चानणी सी होत ॥
छुद्र घण्टा बिछियो का छूटे छण छणख।
ज्यो हंसे बच्चो की वाणी का बणाव ॥
जाझरूं का झणकार व्है जोरें पर जोर।
सावण के मोसम ज्यो झिल्लयो का शोर ॥
फबणी अनुरागू मे अगणित के फैल।
गुम्नज के महल आई मिजाजो के गेल ॥

ऊमर दान

जोधपुर राज्य के ढाढरवाड़ा गांव मे सम्वत् १९०९ मे उत्पन्न इस चारण कवि ने भक्ति रस की सुन्दर रचनाएं की है। इनकी रचनाओ का संग्रह उमर काव्य के नाम से प्रकाशित किया जा चुका है। इसका सम्पादन श्री जगदीशचन्द्र गहलोत ने किया है। इनकी भाषा विद्वत्तापूर्ण न होकर साधारण बोलचाल की है। नमूने के रूप मे यह अंश देखिये:—

अथ ओमकार, अक्षर उचार
निस दिवस नाम, रट राम राम ॥१॥
द्वै सुलभ दीप, श्रद्धा समीप,
रुचि हवेसु राख, दुहु दिव्य दाख ॥२॥

केशरीसिंह बारहट

मेवाड़ राज्य मे सोन्याणा नामक ग्राम मे इनका जन्म सम्वत् १९२७ मे बारहठ कुल में हुआ। इन्होने प्रताप चरित्र, राजसिंह चरित्र, दुर्गादास चरित्र, जसवंत चरित्र और रूठी राणी नामक ५ पुस्तकें लिखी है। ये बड़े विद्वान, इतिहास प्रेमी और काव्य कला के पारंगत थे। इनकी कविता का एक अंश लीजिये:—

वोली वीर भगिनी मैं तो पै बलिहारी वीर
जग्गावत शूर और जरी मम जी की है।
जननी हमारी जन्म-भूमि हेत जावत तू
कीरति अपार कहीं केति या धरी की है॥
कै तो जीत ऐहू के पयान कर देहू प्रान
सुनत अथाह चतुरंगिनी अरी की है।

(आधुनिक काल सम्वत् १९५० से आगे)

इस युग को हम राजस्थानी का ह्रास युग भी कह सकते है। इस काल मे राजस्थानी का प्रभुत्व धीरे धीरे समाप्त होने लगा और उसका साहित्य दिनो दिन विस्मृति के गर्भ मे जाने लगा। राजस्थानी अब मात्र बोलचाल की भाषा रह गई। फिर भी इस युग मे कतिपय बड़े महत्वपूर्ण लेखक हुए हैं और अनेक नई प्रतिभायें सामने आई है, जिनका संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत है।

शिवचरण भरतिया

आधुनिक राजस्थानी के महत्वपूर्ण लेखको मे इनकी गणना की जाती है। इन्होंने बोलचाल की भाषा मे अनेक नाटक लिखे है। ये संस्कृत, हिन्दी और राजस्थानी के मर्मज्ञ विद्वान कहे जाते है। राजस्थानी भाषा मे लिखे हुए इनके ग्रन्थ कुल मिला कर ९ हैं— केशर विलास नाटक, फाट का जंजाल, बुढापा की सगाई, कनक सुन्दर, मोतियों की कंठी, वैश्य प्रबोध, विश्रान्त प्रवासी, संगीत मानकुंवर नाटक और बौद्ध दर्पण।

श्यामलदास

इनका जन्म सम्बत् १८९३ ई० मे और मृत्यु १९५१ मे हुई। ये मारवाड़ के महाराजा सज्जनसिंह के बहुत ही कृपापात्र थे और उनकी सलाहकार परिषद के सदस्य भी थे। वीर विनोद इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है। जिसमें इतिहास और काव्य दोनों का समन्वय है। जहां तक मेवाड़ के इतिहास का सम्बन्ध है, वीर विनोद से अधिकृत और कोई इतिहास नही हो सकता।

पंडित रामकरण आसोपा

इनका जन्म सम्बत् १९१४ मे जोधपुर राज्य के बडलू गाव मे और मृत्यु सम्बत् २००२ मे हुई। ये संस्कृत, हिन्दी, डिंगल आदि भाषाओं के मर्मज्ञ विद्वान होने के साथ साथ सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ भी थे। डा० टैस्सिटोरि को भी डिंगल भाषा के ग्रंथों के सम्पादन मे इन्होंने पर्याप्त सहायता की थी। पंडितजी ने छोटे मोटे लगभग छः दर्जन से ऊपर ग्रन्थों का सम्पादन, सृजन और अनुवाद किया होगा। इनमें से निम्नलिखित ग्रंथ प्रकाशित हो चुके है। राजरूपक, सूरजप्रकाश, नैनसी की ख्यात, मारवाड़ का मूल इतिहास, मारवाड़ी व्याकरण और बांकीदास ग्रन्थावली।

नाथूसिंह महियारिया

नाथूसिंह महियारिया राजस्थान में डिंगल परम्परा के प्रसिद्ध कवियों मे से हैं। इन्होंने वीर सतसई नामक सुप्रसिद्ध ग्रंथ की रचना की है। इनकी काव्य-रचना के उदाहरण स्वरूप कुछ दोहे लीजिये—

ओषद जाणौ मोकला पीड न जाणै लोग।
पिउ केसरिया नहं किया हूं पीली उण रोग॥
सुत मरियो हित देसरे हरख्यो बंधु समाज।
मा नहं हरखी जनमदे उतरी हरखी आज॥

चन्द्रसिंह

आधुनिक राजस्थानी के बहुत सुप्रसिद्ध कवियों मे है। बादली और लू इनकी सुप्रसिद्ध इनकी रचनायें हैं। मौलिक सृजन के अतिरिक्त इन्होने कालीदास के रघुवंश और हाल की गाथा सप्तसती का भी अनुवाद किया है। इनके काव्य रचना का एक नमूना लीजिये—

सावण सांझ सुहावणी
बाजे झीणी बाल
गावै मूमल गोरडया
खावै हियौ उछाल

नान्हा गीता पालणै
खिल–खिल अूछलिया
चूँखै गूंठौ चाव सूं
मारै पग्गलिया ।

सूर्य करण पारीक

इनका जन्म सम्वत् १६६० मे और देहान्त सम्वत् १६६६ मे हुआ । अपने समय के ये प्रकाण्ड विद्वानो मे समझे जाते थे । आधुनिक राजस्थानी के सम्भवतः ये एकमात्र विद्वान थे जिन्होने राजस्थान वासियो का ध्यान अपनी मातृभाषा के उत्थान की ओर आकृष्ट किया । इन्होने अनेक ग्रन्थो का मृजन और सम्पादन किया है, जिसमे ढोला मारू रा दूहा, वेलि कृष्ण रुकमणी री, छन्द राव जेतसी रो और राजस्थानी वातां उल्लेखनीय हैं ।

अन्य लेखक

वर्तमान युग के अन्य लेखको मे श्री नरोत्तमदास स्वामी, श्री मनोहर शर्मा, श्री रावत सारस्वत, श्री अगरचन्द नाहटा, श्री मुरलीधर व्यास, श्रीमती रानी लक्ष्मी कुमारी चूंडावत, श्री पुरुषोत्तमलाल मेनारिया और श्री पतराम गौड़ आदि प्रमुख है । स्वामीजी ने राजस्थानी के अनेक ग्रन्थो का सम्पादन किया है । नाहटाजी ने भी प्राचीन साहित्य को प्रकाश मे लाने की दिशा मे असाधारण कार्य किया है और श्री मुरलीधरजी व्यास राजस्थानी मे बडी मर्मस्पर्शी कहानिया लिखते रहते हैं । उनका एक संकलन वर्षगांठ के नाम से प्रकाशित भी हो चुका है । लोक साहित्य के संकलन और सम्पादन का भी वे महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं । कवियो मे श्री मेघराज मुकुल, श्री गजानन वर्मा, श्री मदनगोपाल शर्मा, श्री सत्यप्रकाश जोशी, श्री रेवतदान चारण, श्री मनोहर प्रभाकर, श्री विश्वनाथ विमलेश, श्री कल्याणसिंह राजावत आदि अनेक कवि अपनी काव्य–प्रतिभा से राजस्थानी का भंडार भर रहे हैं ।

—❀—

६

राजस्थान के लोकगीत

राजस्थान के ग्रामीण क्षेत्रों मे जिस किसी को भी वहां के पनघटो पर जल भरती हुई ग्राम-बालाओं, मेलो मे मस्ती से नाचते हुए युवक युवतियों और विजन वन प्रान्तर मे गोधन चराते हुए चरवाहों को लोक-संगीत की स्वर लहरी मे बहते हुए देखा और सुना है, उन्हें यह अनुमान सहज ही हो सकता है कि राजस्थान लोक-गीतों की दृष्टि से कितना समृद्ध प्रदेश है। सहस्रों की संख्या में उपलब्ध इस प्रदेश के लोक-गीतों मे विषयों की विविधता इतनी असाधारण है, कि अन्यत्र उसका प्राप्त होना दुर्लभ सा ही प्रतीत होता है। ब्राह्म मूहूर्त मे चक्की पीसती हुई महिलाओं को देखिये या मन्ध्यान्ह मे कुएं पर चरस चलाते हुए किसानों को, वे कोई न कोई लोक-गीत गाते हुए ही मिलेंगे।

राजस्थान के लोक-गीत यहां के जन-मानस के विभिन्न पक्षों को बड़ी स्पष्टता के साथ प्रतिविम्बित करते है। इन गीतों मे यहा के जन-साधारण के हास-रुदन, उल्लास-विषाद और करुणा तथा सौजन्य की भावनाओं का बड़ा मार्मिक चित्रण हुआ है। स्थूल रूप से इन गीतो का विषयवार वर्गीकरण निम्न प्रकार किया जा सकता है।

(१) प्रकृति सम्बन्धी लोक-गीत
(२) परिवार सम्बन्धी लोक-गीत
(३) त्यौहारों और पर्वों के लोक-गीत
(४) धार्मिक लोक-गीत
(५) विविध विषयक लोक-गीत

प्रकृति सम्बन्धी लोक-गीत

प्रकृति ने अपनी सुषमा का दान देने मे राजस्थान के साथ अतिशय कृपणता की है। इसलिए सहज रूप से यहां के निवासी निसर्ग-सौन्दर्य के बड़े प्यासे रहे हैं और

उनकी यह पिपासा लोक-गीतो मे बडे ही कलात्मक ढंग से अभिव्यक्त हुई है। इस प्रकार के लोक गीतो मे सबसे अधिक लोक गीत वर्षाऋतु से सम्बन्धित है, क्योकि मरुभूमि होने के कारण यहां इस ऋतु का असीम महत्व है। वर्षा के मौसम मे ही यहा आनन्द और उल्लास के अनेक त्योहार मनाए जाते हैं। हरियाली अमावस्या और श्रावणी तीज तो इस ऋतु के बड़े प्रसिद्ध त्योहार है।

वर्षा ऋतु के जो लोक-गीत प्रचलित है, उनमे प्रकृति की छटा का वर्णन आलंबन और उद्दीपन दोनों ही रूपो मे बड़ा सुन्दर किया गया है। ऋग्वेद के सूक्तो मे वर्षा का जो कल्याणकारी रूप प्रस्तुत किया गया है, उससे वर्षा ऋतु संबन्धी उन अनेक राजस्थानी लोक गीतों का भाव-साम्य दिखाई देता है, जिनमे स्वतन्त्र रूप से ऋतु सौन्दर्य को चित्रित किया गया है। इस तथ्य की पुष्टि मे ऋग्वेद का एक सूत्र और एक राजस्थानी लोक गीत यहा उद्धृत है[1]:—

प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत उदोषधीर्जिहते पिन्वतेस्वः।
इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते यत् पर्जन्यः पृथिवी रैत सावति।
यस्य व्रते पृथिवी नमीति यस्य व्रते शफवज्जर्भुरीति।
यस्य व्रत औषधीर्विश्वरूपाः सनः पर्जन्यः महिशर्म यच्छ।[1]

(पवन वेग से चलता है, बिजलिया गिरती है, औधिया अंकुरित होती है, आकाश क्षरित होता है। यह जो पन्य जल रूपी रस से पृथ्वी का सिंचन होता है, तो सर्व जगत कल्याण के लिए भूमि समर्थ होती है। जिसकी कामना से पृथ्वी सम्यक्-तया नत होती है, जिसके शुभ दर्शन से खुरवाले प्राणी उत्साहित होते है जिसके फल-स्वरूप औधिया विविध रूपो मे अंकुरित होती है, वह पर्जन्य हमे परम कल्याण प्रदान करे।)

राजस्थानी लोक गीत

नित बरसो, मेहा बागड़ मे। नित बरसो०
मोठ-बाजरो-बागड निपजे
गूहूंड़ा निपजे खादर मे। नित बरसो०

मूंग'र चंवला बागड़ निपजे
जवड़ा निपजे खादर में। नित बरसो०

टोड-टोडिया बागड़ निपजे
बैल्या निपजे खादर मे। नित बरसो०

---

१ परम्परा-राजस्थानी लोक-गीत विशेषांक

भेड-बाकरी बागड़ निपजै ।
भैंस्या निपजै खादर मे । नित बरसो०

उद्दीपनरूप मे जहां प्रकृति वर्णन आया है, उसमें विप्रलंभ शृंगार की भावना प्रखर रूप से मुखरित हुई है और ऐसा होना स्वाभाविक भी है, क्योकि मध्ययुग मे यहां के वीर युवकों को अक्सर युद्ध स्थल में या राजाजी की किसी अन्य चाकरी मे संलग्न रहना पड़ता था, और उनकी अर्द्धांगिनियो को घरो मे ही एकाकी जीवन व्यतीत करना पड़ता था। आज भी राजस्थान के गावों मे जो लोग कलकत्ता, बंबई या आसाम मे व्यवसाय-रत हैं, उनकी पत्नियां अक्सर गावों मे ही रहती है। साल में केवल १-२ माह के लिए उनके पति घर आते हैं और फिर लम्बा विछोह देकर चले जाते हैं। वर्षा ऋतु से सम्बन्धित 'निहालदे-सोढा' नामक एक ऐसा ही लोक गीत राजस्थान में बड़ा लोकप्रिय है। इस लोक गीत मे विरहणी नायिका अपने प्रवासी पति का आह्वान करती है। वह कहती है "प्रिय सावन भादो की रंगीन रितु आगई है। छप्पर पुराने पड़ गए हैं, कमजोर बांस तड़कने लगे हैं, बादलो मे बिजली चमक रही है और तुम्हारी प्रिया महल मे अकेली डरती है, इसलिए हे गुलाब के फूल। तुम जल्दी से घर आ जावो।" आगे चल कर वह यौवन की क्षणभंगुरता का चित्रण करती हुई उसे जल्दी घर लौटने का आग्रह करती है। गीत इस प्रकार है—

सावण तो लाग्यो पिया, भादवो जी कांहि बरसण लागो,
बरसण लागो जी मेह, हो जी ढोला मेह।
अब घर आय जा गोरी रा रे बालमा हो जी ॥ टेक ॥

छपर पुराणा पिया पड़ गया रे कोई तिड़कण लागा,
तिड़कण लागा बोदा बांस, हो जी ढोला बाँस,
अब घर आय जा बरसा रुत भली हो जी ॥ १ ॥

बादल में चमके पिया बीजली रे, कोई मेलां मे डरपै,
मेलां मे डरपै घर री नार, हो जी छोटी नार,
अब घर आय जा, फूल गुलाब रा हो जी ॥ २ ॥

कागद तो व्है तो ढोला बाच लूं जी।
करम न बांच्यो, करम न बाच्यो जाय।
अब घर आय जा आसा थारी लग रही हो जी ॥ ३ ॥

टाबर तो व्है तो पीया राख लूं जी ढोला।
जोबन राख्यो, जोबन राख्यो न जाय।
अब सुध लीजो गौरी रा सायबा हो जी ॥ ४ ॥

अंग मे नही मावै कांचली जी, ढोला हिवडै नही मावे,
हिवडै नही मावे हार, हो जी ढोला।
अब घर आय जा गोरी रा बालम ओ जी ॥ ५ ॥

आवरण-आवरण कह गयो रे ढोला, कर गयो कवल अनेक
कर गयो कवल अनेक।
अब घर आय जा बरसा रुत भली हो जी ॥ ६ ॥

प्रकृति संबंधी दूसरे लोक गीतो मे वे गीत है, जिनमे वृक्षों, पौधों, लताओ और पशु पक्षियों को प्रतीक बना कर हृदय की कोमल भावनाओ की अभिव्यक्ति की गई है। 'पोदीनों' 'पीपली' 'मेहदी' और कुरजां' ऐसे ही सुप्रसिद्ध गीत है। 'कुरजा' की समानता तो एक माने मे कालिदास के 'मेघदूत' के बादल से की जा सकती है, क्योंकि दोनो को ही सन्देश-वाहन का दायित्व सौंपा गया है। अन्तर केवल इतना है कि 'मेघदूत' का बादल प्रेमी के सन्देश का वाहक है, जब कि कुरजा प्रेमिका के सन्देश की वाहिका। 'कुरजां और 'पीपली' नामक गीत हिन्दी रूपान्तर सहित यहां प्रस्तुत हैं।

कुर्जां

तूं छै ये कुर्जां भायली, तू छै धरम की भैण,
एक संदेशो ये बाई म्हारो ले उडो, ये म्हारी राज।
कुर्जां म्हारा पीव मिला दे ये।
वी लसकरिये नै जाय कहिये क्यूं परणी थे मोय ?
परण पिराछित क्यूं लियो ये जी रह्या क्यूं न अनख कुंवार।
कुंवारी ने वर तो घणां छा जी।
ऊठी कुर्जां ढ़लती माझल रात,
दिनड़ो उगायो माऊजी रा देश मे जी म्हाकाराज।
बैठ्या पना मारू तखत बिछाय,
कागद राल्या भंवरजी की गोद मे जी म्हांकाराज।
आवो ये कुर्जां बैठो म्हारे पास,
कुणांजी री भेजी अठे आई जी म्हाका राज।
थारी धण की भेजी अठे आई जी,
थारी धण का कागद साथ—भंवर थे बाच लेवो म्हांका राज।
अन्न बिना रयो ये न जाय।
दूध दलां का थारी धण खण लिया जी म्हाका राज।
बिंदली तो सरव सुहाग,
काजल टीकी को थारी धण खण लियो जी म्हांकाराज।

सोयां विना रह्यो ये न जाय,
हिंगलू ढोल्या को थारी धरण खरण लियो जी म्हांका राज।
चुनड़ी को सरब सुहाग,
गोट मिसरू को थारी धरण खरण लियो जी म्हाँका राज।
आज उणमणा हो रया जी, रह्यो के संदेशो आय,
के चित आयो थारो देसड़ो जी के चित आया माई बाप,
भायेला दिलगीरी क्यूं लायाजी।
ना चित आयो म्हारो देसड़ो जी ना चित आया माई बाप,
भायेला म्हाने गौरी चित आई जी।
ओ ल्यो साथीड़ो थारो साथ,
ओ ल्यो राजाजी थारी नौकरी जी।
भायेला म्हें तो देश सिधारस्याँ जी।
झटसी घुड़ला कस लिया जी, करली घोड़े पर जीन,
करवा म्हाने बेग पुगाद्यो जी।
दांतण करो कुवा बावड़ी जी, मल-मल करो असनान।
भंवर थाँने बेग पुगाद्याँ जी।

कुर्जां एक छोटी चिड़िया होती है। एक विरहणी उससे कहती है—हे कुर्जां! तू मेरी प्यारी सखी है। तू मेरी धर्म की बहन है। हे बहन! मेरा यह सन्देशा लेकर उड़। और मेरे प्रियतम को मुझसे मिला दो।

उस लश्करिये को जा कर कहना कि तुमने मुझे क्यों ब्याहा था? तुम क्वांरे क्यों न रह गए? मुझ क्वाँरी के लिए तो बहुत से वर मिल जाते।

आधी रात ढलने पर कुर्जां उड़ी। दिन उगते उगते वह प्रियतम के देश मे पहुंच गई।

पति तख्त बिछा कर बैठा था। कुर्जां ने पति की गोद मे स्त्री का पत्र गिरा दिया। पति ने कहा—कुर्जां! आओ मेरे पास बैठो। किसकी भेजी हुई तुम यहाँ आई हो? कुर्जां ने कहा—तुम्हारी स्त्री ने मुझे यहाँ भेजा है। उसकी चिट्ठी साथ लाई हूँ। उसे बाँच लो।

तुम्हारी स्त्री का यह हाल है कि जीने के लिए बेचारी को अन्न तो लेना ही तो पड़ता है। पर उसने दूध-दही न लेने की प्रतिज्ञा कर ली है। सुहाग-चिन्ह बिन्दी को रहने दिया है, पर काजल और टीकी न लगाने का उसने प्रण कर लिया है। सोये बिना कैसे रहा जा सकता है? पर उसने पलंग पर न सोने का प्रण कर लिया है। सुहाग-चिन्ह चुनरी को कैसे छोड़ी जा सकती है? पर गोटे किनारी के रेशमी वस्त्रों के न पहनने का उसने प्रण कर लिया है।

कुर्जां की जबानी अपनी प्यारी का संदेशा सुन कर पति उदास हुआ है। उसके साथी पूछते है—आज अनमने से क्यों दिखाई पडते हो ? क्या बात है ? क्या कही से कोई संदेशा आया हे ? या देश की याद आई है ? या मा- बाप की सुध आई है ? मित्र ! चित्त पर उदासी क्यो झलक रही है ?

पति कहता है—हे मित्र ! न मुझे देश याद आ रहा है। न मा-बाप की सुध आ रही है। मुझे मेरी प्यारी स्त्री याद आ रही है।

लो साथियो ! तुम्हारा साथ छोड़ता हूं। लो, राजाजी, आपकी नौकरी छोड़ता हूं। मैं तो अपने देश जा रहा हूं।

झटपट घोड़ा कस कर उस पर जीन रख ली और उसने घोड़े से कहा—हे घोड़े ! मुझे जल्दी पहुंचा दो। घोड़े ने कहा—हे स्वामी ! कुंए पर दातुन करो, बावड़ी मे खूब मल-मल कर नहा लो, मै जल्दी ही पहुँचा दूंगा।

पीपली

बाय चल्या छा भंवरजी पीपली जी,
हां जी ढोला हो गई घेर घुमेर।
बैठण की रुत चाल्या चाकरी जी.
ओ जी म्हांरी सास सपूती रा पूत
मतना सिधारो पूरब की चाकरी जी ॥ १ ॥

व्याय चल्या छा भंवरजी गोरड़ी जी,
हां जी ढोला हो गई जोध जुवान।
विलसण की रुत चाल्या चाकरी जी,
ओ जी म्हारी लाल नणद रा ओ बीर
मत ना सिधारो पूरब की चाकरी जी ॥ २ ॥

कुंण थारा घुड़ला भंवरजी कस दिया जी,
हां जी ढोला कुंण थाने कस दिया जीण।
कुण्या जी रा हुकमा चाल्या चाकरी जी,
ओ जी म्हारै हीवड़े रा जीवड़ा
मत ना सिधारो पूरब री चाकरी जी ॥ ३ ॥

बड़े वीरे घुड़ला गौरी ! कस दिया जी।
हां ए गोरी ! साथीड़ा कस दिया जीण।
बापाजी रा हुकमा चाल्या चाकरी जी ॥ ४ ॥

रोक रुपैयो भंवरजी मै बणूं जी
हा जी ढोला ! बण ज्याऊं पीली-पीली म्होर।

भीड़ पड़े जद भंवरजी ! बरत ल्यो जी ।
ओ जी म्हारी सैजाँ रा सिणगार !
पियाजी ! प्यारी ने सागे ले चालो जी ॥ ५ ॥

कदे न ल्याया भंवरजी ! सीरणी जी ।
हां जी ढोला ! कदे न करी मनुवार ।
कदे न पूछी मनड़े री बारता जी ।
ओ जी म्हारी लाल नणद रा वो बीर !
थाँ बिन गोरी ने पलक न आवड़े जी ॥ ६ ॥

कदे न ल्याया भंवरजी । सूतली जी ।
हाँ जी ढोला ! कदे बी बुणी नही खाट ।
कदेय न सूत्या रलमिल सेज मे जी ।
ओ जी पियाजी ! अब घर आओ ।
थारी प्यारी उडीके महल मे जी ॥ ७ ॥

था रे बाबाजी ने चाए भंवरजी ! धन घणों जी
हाँ जी ढोला । कपड़े री लोभण थारी माय ।
सेजां री लोभण उडीके गोरड़ी जी ।
थांरी गोरी उडावे काग ।
अब घर आओ जी क धाई थारी नौकरी जी ॥८॥

अब के तो ल्यावां गोरी ! सीरणी ए ।
हां ए गोरी ! अब करस्यां मनुवार ।
घर आय पूछां मनड़े री बारता जी ॥ ९ ॥

अब के ल्यावां गोरी सूतली जी ।
हां ए गोरी ! आय बुणांगा खाट ।
पछे सोस्यां रलमिल थारी सेज में जी ॥ १० ॥

चरखो तो ले ल्यूं भंवरजी रांगलो जी ।
हां जी ढोला ! पीडो लाल गुलाल ।
तकवो तो ले ल्यूं जी भंवरजी । बीजलसार को जी ।
ओ जी म्हारी जोड़ी रा भरतार !
पूणी मंगाल्यूं जी'क बीकानेर को जी ॥ ११ ॥

म्होर-म्होर की कातूं भंवरजी ! कूकड़ी जी,
हां जी ढोला ! रोक रुपैए रो तार ।
मैं कातूं थे बैठा बिणजल्यो जी ।

ओ जी म्हारा लाल नणद रा वो वीर।
जल्दी घर आओ प्यारी ने पलक न आवड़े जी ॥१२॥

गोरी री कुमाई खासी राडिया रे।
हा ए गोरी! के गंधी के मणियार।
म्हें छा बेटा साहूकार का जी।
ए जी म्हारी घणी ए पियारी नार।
गोरी री कुमाई से पूरा ना पड़े जी॥ १३ ॥

साँवण खेती भंवरजी! थे करी जे।
हां जी ढोला। भादुड़े करयो जी नीनाण।
सीटा री रुत छाया भंवरजी। परदेश मे जी।
ओ जी म्हारा घणा कमाऊ उमराव।
थारी पियारी ने पलक न आवड़े जी॥ १४ ॥

उजड़ खेड़ा भंवरजी फेर बसे जी।
हा जी ढोला। निरधन के धन होय।
जोबन गये पछे कना बावड़े जी।
ओ जी थाने लिखूं बारम्बार।
जल्दी घर आओ जी'क थारी धण एकली जी ॥१५॥

जोबन सदा न भंवरजी। थिर रहे जी।
हा जी ढोला! फिरती थिरती छांय।
पुल का तो वाया जीक मोती निपजे जी।
ओ जी थारी प्यारी जी जोवै बाट।
जल्दी पधारो देश मे जी॥ १६ ॥

स्त्री कहती है—हे पति! तुमने पीपल लगाया था। हे प्राणनाथ! वह अब खूब घनी छाया वाला हो गया है। जब उसकी छाया में बैठने की ऋतु आई, तब तुम परदेश को चले। हे मेरी सुपुत्रवती सास के पुत्र! तुम कमाने के लिये पूरब मत पधारो ॥१॥

तुमने जिस गोरी से विवाह किया था, वह यौवन मद से मतवाली हो गई है। जब विलास की ऋतु आई, तब तुम कमाने चले। हे मेरी प्यारी ननद के भाई! कमाने के लिये पूरब मत जाओ ॥२॥

हे मेरे नाथ! किसने तुम्हारा बेड़ा [illegible] किया? किसने [illegible]

पं० रामनरेश त्रिपाठी के संग्रह से।

दिया ? किसकी आज्ञा से तुम परदेश जा रहे हो ? हे मेरे हृदय के जीव तुम कमाने के लिये पूरब मत जाओ ।।३।।

पति ने कहा—बड़े भाई ने घोड़ा कस दिया और साथियों ने उस पर जीन रख दी । बाबा की आज्ञा से मै कमाने जा रहा हूं ।।४।।

स्त्री ने कहा--हे नाथ मै तुम्हारे लिए रुपया बन जाऊंगी । मैं तुम्हारे लिये पीली-पीली मोहर बन जाऊंगी । हे प्राणधन ! जब जरूरत पड़े, उसे काम मे लाना । हे मेरे सेज के शृंगार ! प्रियतम । अपनी प्यारी को भी साथ ले चलो ।।५।।

पति परदेश चला गया । स्त्री पति को पत्र लिखती है--

हे स्वामी ! तुम न कभी मिठाई लाये और न मुझे प्यार से खिलाया । न तुमने कभी मन की बात ही पूछी । हे मेरी प्यारी ननद के भाई ! तुम्हारे बिना तुम्हारी गोरी को एक क्षण भी चैन नही पड़ती ।।६।।

न तुम कभी सुतली ले आये । न तुमने खाट ही बुनाया । न कभी हम दोनों हिलमिल कर सेज पर सोये । हे प्रियतम ! अब घर आओ । तुम्हारी प्यारी महल में तुम्हारी प्रतिक्षा कर रही है ।।७।।

तुम्हारे बाबाजी को तो बहुत धन चाहिये । और हे पति ! तुम्हारी मां कपड़े की लोभिन है । सेज की लोभिन तुम्हारी गोरी प्रतीक्षा कर रही है । तुमको बुला लाने के लिये तुम्हारी गोरी कौआ उड़ाया करती है । तुम्हारी कमाई से मैं बाज आई । तुम घर आओ ।।८।।

पति ने पत्र का उत्तर लिखा--हे गोरी ! अबकी बार मिठाई लाऊंगा और प्यार से तुमको खिलाऊंगा । घर आकर मन की बात भी पूछूंगा ।।९।।

अब की सुतली भी लाऊंगा । खाट भी बिनूंगा और फिर हम दोनों हिल-मिल कर बड़े सुख से तुम्हारी सेज मे सोयेंगे ।।१०।।

पत्नी लिखती है—हे प्रियतम ! हे मेरे समान यौवन पूर्ण ! हम एक सुन्दर चरखा, एक रङ्गीला पीढ़ा और अच्छे लोहे का एक तकवा खरीद लेंगे और बीकानेर से रुई की पोंणी मंगा लेंगे ।।११।।

हे पति ! मै मोहर मोहर की कुकड़ी कातूंगी और रुपयों के मूल्य के तार मैं कातूंगी और तुम बुन लेना । यह व्यवसाय हम करेंगे । हे मेरो प्यारी ननद के भाई ! ज़ल्दी घर आओ । पल भर के लिये भी मुझे चैन नही पड़ती है ।।१२।

पति ने लिखा--स्त्री की कमाई कोई निकम्मा आदमी खायेगा या कोई इत्र वेचने वाला या कोई मनिहार । मै तो साहूकार का वेटा हूँ । हे मेरी अत्यन्त प्यारी स्त्री ! स्त्री की कमाई से काम नही चलेगा ।।१३।।

स्त्री ने लिखा--सावन मे तुमने खेती की थी और भादों मे निराया था । जब

भुट्टे आने का समय आया, तब तुम परदेश मे हो। हे मेरे बहुत कमाने वाले राजा! अब घर आओ। तुम्हारी प्यारी को पल भर भी चैन नही पड़ती ॥१४॥

हे पति! गाव उजड कर फिर बस जाता है। निर्धन को धन भी मिल जाता है। पर गया हुआ यौवन फिर नही लौटता। हे मेरे प्राणाधार! मै तुमको बार बार लिखती हूँ। जल्दी आओ। तुम्हारी प्यारी अकेली है ॥१५॥

हे पति! यौवन सदा स्थिर नही रहता। यह तो बादल की छाया के समान है। समय पर बोया हुआ मोती उपजता है। हे पति तुम्हारी बाट जोह रही हूँ, जल्दी घर पधारो ॥१६॥

उक्त गीतों के अतिरिक्त सूरज, चाद और सितारो से सम्बन्धित भी अनेक गीत है, जिनका भावात्मक सौन्दर्य देखते ही बनता है।

परिवार सम्बन्धी लोक-गीत

समाज शास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से राजस्थान के परिवार सम्बन्धी लोक गीतो का बड़ा महत्व है। ये लोक गीत यहा के पारिवारिक जीवन के साथ साथ यहां के रीति रिवाज और सामाजिक प्रथाओ पर पर्याप्त प्रकाश डालते है। परिवार सम्बन्धी लोक गीतो मे भाई-बहन के सम्बन्ध, कन्या की बिदाई, पति-पत्नि के रसात्मक सम्बन्ध, ननद-भोजाई का झगड़ा, सास का दुर्व्यवहार आदि सभी पक्षो का प्रभावशाली चित्रण उपलब्ध होता है। जन्म और परिणय सम्बन्धी जो लोक गीत प्राप्य हैं, उनमे प्रचलित परम्पराओ और प्रथाप्रो का विशद् विवरण प्रस्तुत किया गया है। अकेले विवाह सम्बन्धी लोक गीतों की संख्या ही दरजनो मे होगी। बना-बनी के गीत, फेरो के गीत, बिदाई के गीत आदि अनेक गीत विवाह से सम्बन्धित हैं। यहा हम एक ऐसा बहु-प्रचलित गीत उदाहरण के लिए दे रहे हैं, जिसमे पारिवारिक सुख-समृद्धि के लोकादर्श का दिग्दर्शन कराया गया है।

आंबो मोरियो

मधुबन रो ए आंबो मौरियो, ओ तो पसर्‌यो ए सारी मारवाड़।
सहेल्या ए आंबो मौरियो ॥१॥

बहू रिमझिम महला से उतरो, बहू कर सोला सिणगार।
सासूजी पूछया ए बहू थारे गैणो ए म्हाने पैरि दिखाव।
सहेल्या ए० ॥२॥

सासू गहणा नै के पूछो, गहणा ओ म्हारो सो परिवार।
म्हारा सुसरो गढ का राजबी सासूजी म्हारी रतन भण्डार।
सहेल्या ए० ॥३॥

म्हारो जेठजी बाजूबन्द बांकड़ा, जिठाणी म्हारी बाजूबंद की लूंब ।
म्हारो देवर चुड़लो दांत को, देवराणी म्हारी चुडला की मजीठ ।
सहेल्या ए० ॥४॥

म्हारा कंवरजी घर रो चांदणो, कुलबहू ए दिवले री जोत ।
म्हारी धीयज हाथ री मूंदड़ी, जंवाई म्हारे चमेल्या री फूल ।
सहेल्या ए० ॥५॥

म्हारी नणद कसूंमल कांचली, नणदोई म्हारो गज मोत्यां री हार ।
म्हारा सायब सिर को सेवरो, सायबाणी म्हे तो सेजांरा सिणगार ।
सहेल्यां ए० ॥६॥

म्हें तो बार्याजी बहूजी थारे बोल नै, लड़ायो म्हारो सो परिवार ।
म्हे तो बार्याजी सासूजी थारी कूख नै, थे जो जाया अर्जुन भीम ।
सहेल्या ए० ॥७॥

म्हे तो वार्याजी बाईजी थारी गोद नै थे खिलाया लिछमण राम ।
सहेल्यां ए आँबो मौरियो ॥८॥

मधुबन में आम बौरा है । अहा ! यह तो सारे मारवाड़ में फैल गया है । हे सखियो ! आम मे बौर आया है ॥१॥

बहू सोलह शृंगार करके छम-छम करती हुई महल से उतरी । सास ने पूछा—हे बहू ! तुम्हारे पास क्या-क्या गहने हैं ? पहन कर मुझे दिखाओ ॥२॥

बहू ने कहा—हे सासजी ! मेरे गहनों की बात क्या पूछती हो ? मेरा गहना तो सारा परिवार है । मेरे सुसुरजी घर के राजा है और सासूजी रत्नों की भण्डार है ॥३॥

मेरा पुत्र घर का चांद है और मेरी पुत्र-बधू दिये की जोत ।
मेरी कन्या हाथ की अंगूठी है और मेरा जामाता चमेली का फूल है ॥५॥

मेरी ननद कुसुम्भी चोली है और ननदोई गजमुक्ताओ का हार । मेरे स्वामी सिर के मुकुट और मैं उनकी सेज का शृङ्गार हूँ ॥६॥

यह सुन कर सास ने कहा—-बहू मै तो तुम्हारे बोल पर न्यौछावर हूँ । तूने मेरे सारे परिवार को सुखी किया । बहू ने कहा—-सासजी मैं तो तुम्हारी कोख पर न्यौछावर हूँ । तुमने तो अर्जुन और भीम जैसे प्रतापी पुत्र पैदा किये हैं ।

और हे ननद ! मै तुम्हारी गोद पर न्यौछावर हूँ । तुमने तो राम और लक्ष्मण जैसे भाइयों को गोद में खिलाया है ॥८॥

× मारवाड़ के ग्राम गीत—-पं. रामनरेश त्रिपाठी ।

त्यौहारों और पर्वों के लोक गीत

राजस्थानी संस्कृति को यदि त्यौहार बहुला कहा जाय, तो कोई अत्युक्ति न होगी। दीपावली, दशहरा, रक्षा बन्धन और होली के त्यौहार तो सभी प्रदेशों मे मनाये जाते है। किन्तु इन त्यौहारो के अतिरिक्त भी यहाँ ऐसे अनेको पर्व और त्यौहार है जिनकी अपनी स्थानीय विशिष्टतायें है। गणगौर और तीज ये दो इसी कोटि के प्रमुख त्यौहार है, जो अपनी रंगीनी के लिए भारत भर मे सुप्रसिद्ध है। उदाहरण के लिए दो गीत यहा प्रस्तुत हैं।

गणगौर का गीत

खेलण दो गिणगौर, भंवर म्हांने खेलण दो गिणगौर
हे जी म्हारी सइयां जोवे बाट, भंवर म्हाने खेलण दो गिणगौर।
माथै ने मैंमद लाख, भंवर म्हारे माथा ने मेमद लाव
होजी म्हांरी रखड़ी रतन जड़ाव, भंवर म्हाने खेलण दो गिणगौर ॥

तीज का गीत

ए मा, चम्पा बाग मे हीडो घला दे, तीज नेवली आई
ए मा, और सहेल्या रै घर रौ हीडो, म्हारे हीडो नाही
ए मा, हीडे हीडण हूं गई, कोइयन हींडे हिडाई
सेडा सहेल्या म्हासूं मुख मोडियो, बिना होडिया ई आई।
ए मा, चम्पा बाग मे हीडो घला दे, तीज नेवली आई।

धार्मिक गीत

धर्म और भक्ति की भाव-धारा राजस्थान के लोक-जीवन मे स्वच्छन्द रूप से वही है। एक ओर यहां हिन्दुओ के सहस्त्रो देवी-देवताओं के मन्दिर और मंडप दृष्टि-गोचर होते है, तो दूसरी ओर मुसलमानो की मस्जिदें, सिक्खो के गुरुद्वारे, ईसाइयो के गिर्जाघर और जैनियो के तीर्थङ्करो की प्रतिमाओ से सुसज्जित देवालय यहा के शासकों की धार्मिक उदारता का उद्घोष करते है। यही कारण है कि यहा के लोक-गीतो मे भक्ति-भावना की बड़ी सरल तरल अभिव्यक्ति हुई है। इस प्रकार के लोक-गीतो में देवी देवताओं के गीत प्रमुख है, जिनमे बालाजी–भैरोजी, गनेशजी, दुर्गा, शीतला माता तथा उन लोक-प्रतिष्ठापित वीरो के गीत है, जिनके महान् कार्यों के लिये जनता ने उन्हें देवतुल्य स्वीकार कर लिया। डूंगजी, जवाहरजी, तेजाजी, रामदेवजी, पाबूजी राठौड़ आदि के गीत इसी कोटि मे रखे जा सकते हैं। इन धार्मिक गीतो मे जहा सम्बन्धित देवता का प्रशस्ति-गान किया गया है, वहा उनसे तरह-तरह की अपनी हार्दिक कामनाओ को पूरा करने का भी अनुरोध किया गया है। कार्तिक मास मे गाये जाने

वाले 'हरजस' (धार्मिक गीत) तो भक्ति सम्बन्धी लोक-काव्य के सबसे अधिक महत्वपूर्ण अंग है। इन गीतों मे अक्सर राधा और कृष्ण को आधार बना कर आध्यात्मिक भावनाओं का चित्रण किया गया है। 'हरजस' का एक उदाहरण यहां देना अप्रासंगिक न होगा--

हरजस

ए राधा ! भज लेनी राम, राम भजियां काया सूधरे, हरि राम।
ओ रामजी, राम मोसू भजियो रै नही जाय, जिवड़ो धन मे झिल रहियो
ओ हरि राम ॥
ए राधा मत कर धन रो गुमेज, धन धरती मे रेह जाई ॥१॥

ए राधा ! भज लेनी भगवान, राम सिवरियां काया सूधरै, हरि राम।
ओ प्रभू मोसूं राम भजियो रे नही जाय जिवड़ो पूतरलों मे झिल रहियो
ओ हरि राम।
ए राधा मत कर पूतों रो गुमेज, पूत पाड़ोसी हवै जाई।
आडी घालेला भीत, मूंडे बोलण री हवेला साबली ॥२॥

ए राधा ! भज लेनी राम, राम भयिजां काया सुधरै हरि राम।
ओ रामजी मोसूं राम भजियो रै नही जाय, जिवड़लो धीडबली में
झिल रहियो हरि राम।
ए राधा ! मत कर धीवडली रो गुमेज, धीवड़ जंवाई-राणा ले जाई।
आडी देला सीव मुखड़ो देखण ही हवैला साबली ॥३॥

ए राधा ! भज लेनी राम, राम भजिया काया सूधरे ओ हरि राम।
ओ रामजी मोसूं राम भजियो रे नही जाय, जिवड़ो जोबनिया मेंझिल
रहियो हरि राम।

ए राधा ! मत कर जोबनिया रो गुमेज, अन्त बुढापो आवसी ॥४॥

भगवान कृष्ण राधा से कहते है कि ए राधा। परमात्मा का स्मरण कर। इससे तुम्हारा उद्धार हो जावेगा। राधा उत्तर मे निवेदन करती है—भगवन् मेरे से भगवत् भक्ति नही होती, क्योकि मेरा जी माया मे फंसा हुआ है। इस पर भगवान कृष्ण फिर राधा से कहते है कि राधा माया का तुझे व्यर्थ गर्व है। यह तो धरती (पृथ्वी) मे रह जायगी। इसलिये यही उपयुक्त है कि भगवान की उपासना की जाय। किन्तु राधा कहती है—मेरा जी पुत्रो के स्नेह मे लिप्त है, मुझसे कभी परमात्मा का भजन नही होगा। भगवान कहते है—राधा पुत्रो का तू क्या घमण्ड करती है, वे एक दिन तुझसे पृथक होकर आडी भीत खड़ी कर देगे, और उनसे बोलने के लिये भी तू

लालायित रहैगी अर्थात् तरसेगी। पुत्री को दामाद (जंवाई राणा) ले जावेंगे और उसका मुंह भी बड़ी कठिनाई से कभी कभी देख सकेगी। यौवनावस्था अस्थिर है। अन्त मे वृद्धावस्था आकर तुझे घेर लेगी और फिर कुछ न हो सकेगा।)

विविध विषयक लोक-गीत

उपरोक्त चारो श्रेणियों मे जिन गीतो की गणना की गई है, उनके अतिरिक्त कुछ पृथक-पृथक विषयों पर भी इक्के-दुक्के गीत विरल संख्या मे उपलब्ध होते है। इन्हें हम विविध विषयक लोक गीतो की संज्ञा दे सकते है। कुछ गीत ऐसे हैं, जिनमे कतिपय प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटनाओं को पद्य-बद्ध किया गया है और कुछ गीत ऐसे हैं, जो किसी वस्तु विशेष पर लिखे गये है। 'रतन--राणा', 'घुड़लो', 'अमरसिंह राठौड़' और 'गोरवन्द' इत्यादि ऐसे गीतों मे प्रमुख है। इसके अतिरिक्त कुछ शकुन सम्बन्धी और अन्ध विश्वासों सम्बन्धी गीत भी हैं। बच्चों के लोक-गीत भी विरल संख्या मे उपलब्ध होते हैं। ये एक प्रकार की 'नर्सरी रहाइम्स्' ही हैं जिनमे तुको के मिलने और सरल शब्दो की संयोजना को ध्यान मे रखा गया है। बच्चो के गीत का एक उदाहरण यह दिया जा सकता है—

मेह बाबा आजा

मेह बाबा आजा।
घी नै रोटी खाजा॥

आयो बाबो परदेशी।
अबै जमानो कर देसी॥

ठाकणी में ढोकलो।
मेह बाबो मोकलो॥

लोक गीतों की गायन पद्धति

लोक गीतों का महत्व केवल उनके भावनात्मक सौन्दर्य मे ही निहित हो, ऐसा नही है। उनकी वास्तविक महत्ता तो उनके संगीतात्मक सौन्दर्य मे है। प्रत्येक लोक-गीत को गाने की अपनी विशिष्ट गायन पद्धति होती है और जब तक वह उस पद्धति से न गाया जाय, तब तक उससे पूर्ण रस-निष्पत्ति नही हो सकती। किसी भी लोक गीत की पूर्ण भावाभिव्यंजना करने के लिए और श्रोता के साथ उसका साधारणीकरण करने के लिए यह परमावश्यक है कि उसका संगीतात्मक प्रस्तुतीकरण किया जाय। राज-स्थान के लोक गीतों मे जिन रागों का प्रयोग मुख्य रूप से किया जाता है, उनमे काफी

बिलावल, खमाज, पीलू इत्यादि रागों का प्राधान्य हैं । 'माड' तो राजस्थान के लोक-संगीत की एक ऐसी विशिष्ट और सुप्रसिद्ध गायन प्रणाली है जो शनैः शनैः शास्त्रीय राग का स्वरूप ही ग्रहण कर रही है । यह गायन प्रणाली इतनी अधिक लोक प्रिय हुई है कि राजस्थान से बाहर के प्रदेशों मे भी यहां के लोक-गीत गायकों को आमन्त्रित किया जाता है ।

साहित्य अकादमी की स्थापना और जयपुर मे रेडियो स्टेशन खुल जाने से अब राजस्थान की लोक-संस्कृति की यह धरोहर और भी समृद्ध होती जा रही है और इसके संचयन और संरक्षण के समुचित प्रयत्न किये जा रहे हैं ।

७

राजस्थानी लोक कथाएँ

अपनी अर्द्ध सभ्य अवस्था मे ही मनुष्य ने कहानी कहना और सुनना आरम्भ कर दिया था। गुफाओ मे रहनेवाला एवं शिकार पर ही जीवन निर्वाह करनेवाला मानव भी कहानी मे पूरा रस लेता था। किस प्रकार एक वीर ने भयंकर कान्तार मे प्रवेश किया, किस प्रकार उसने पानी पीते हुए एक मोटे तगडे हरिण को अपने पत्थर के हथियार मे धराशायी किया, किस प्रकार फिर सारे परिवार ने मिल कर आनन्द मनाया आदि आदि बाते उनकी कहानियों मे थी। ज्यो ज्यो समय व्यतीत होता गया मानव जीवन के साथ २ कहानी भी नया नया रूप धारण करती गई। कहानी-संसार मे नाना प्रकार के देवी-देवता एवं राक्षस प्रेत विचरण करने लगे। उसमे पेड पौधो एवं पशु-पक्षियो ने भी ज्ञान-लीला दिखलाई। समय पाकर कहानियो मे नर-वीरो का यश गाया जाने लगा। नर नारी के प्रेम के अगणित कथानक चल पडे। इन जन-कथाओ के संग्रह तैयार हुए। इन संग्रहों के आधार पर नाना प्रकार के काव्य एवं नाटको का निर्माण हुआ। इस प्रकार लोक कथाएँ मानव जीवन का एक प्रमुख अंग रहती आई है। इनमे मानव-संस्कृति का इतिहास छिपा है। जन-कथाओ मे लोक जीवन की स्पष्ट झाकी देखी जा सकती है। सभी युगों मे कहानियो का प्रचार मनोरंजन के साथ साथ ज्ञान के प्रसार एवं चरित्र निर्माण के लिए भी आवश्यक माना गया है। शिक्षा मे इनका बड़ा हाथ है। मानव जीवन के सभी प्रसंगो के लिए उपदेशमयी कहानिया तैयार है। समय के साथ २ जन कथाएँ बनती एवं बिगड़ती चली आ रही है।

लोक कथाएँ तो हमारे देश के सभी भागो में प्रचुर मात्रा मे पाई जाती हैं, परन्तु राजस्थान तो इनका प्रमुख केन्द्र है। यहां के नर नारियो ने बडी ही सरस कहानियाँ इस प्रदेश मे छोड़ दी हैं। इतिहास मे तो थोडे से लोगो की जीवन कहानी रहती हैं परन्तु लोक-हृदय पर ऐसे अगणित व्यक्ति अमिट रेखाएँ खीच जाते हैं, जिनका इतिहास

मे कही जिक्र भी नही मिलता। राजस्थान में ऐसा विशेषता के साथ हुआ है। यहाँ के पत्थर २ मे अपनी पुरानी कहानी है, गाँव २ का अपना इतिहास है। फलस्वरूप राजस्थानी साहित्य मे जितनी कहानियाँ पुराने समय की मिलती है, उतनी अन्यत्र पाई जानी कठिन है, राजस्थानी बातों का क्या ठिकाना। लिखित बातो के अतिरिक्त मौखिक बातों का तो यहां कोई पार ही नही है। यदि कोई व्यक्ति राजस्थानी जन-जीवन का अध्ययन करना चाहे, तो उसके लिए यहां की जन कथाओं को हृदयंगम करना जरूरी है।

राजस्थान मे कहानी कहने के लिए अलग जातियाँ हैं। और उनकी कहानी कहने की अपनी शैली है। मूल रूप मे उनको सशरीर कथा-सरित्-सागर कहना चाहिए। उनकी कहानियो का अंत तो आता नहीं। रात २ भर कहानी कहते चले जाते हैं। अपनी कहानी को सरस बनाने के लिए बीच २ में कविता का प्रयोग करना, उसमें अवान्तर कथा जोड़ना वर्णन को चित्रोपम बनाना, स्वर को घटाना बढ़ाना आदि २ उपाय वे काम में लाते ही रहते है। वे जिस प्रसंग का कहानी मे जिक्र करेंगे उसका यथार्थ शब्दचित्र खींच देंगे। छोटी कहानी को बड़ी बनाना उनके लिए एक साधारण बात है। इनके अतिरिक्त प्रत्येक गाँव का अपनी कहानी कहनेवाला व्यक्ति भी रहता है। जाड़े में धूंई के चारों तरफ कहानी की अनवरत रसधारा बहती है। गांव का कोई बडा-बूढ़ा इस अवसर पर व्यास-आसन ग्रहण करके लोगों को अपनी बातों से मंत्रमुग्ध कर देता है। इस प्रदेश मे कहानी प्रारम्भ करने एवं उसका अंत करने का भी एक ढंग होता है। हरेक कहानी कहने वाला चाहता है कि श्रोतागण उसकी कहानी के लिए 'हुंकारा' जरूर दे। अतः कहानी शुरू करने के पहिले वह कहेगा—'बात में हुंकारो, फौज में नगारो, वात कहतां बार लागै। आधाक सोवै आधाक जागै, सोवणियाँ की पागड़ी जागता ले भागै, रामजी भला दिन देवै तो एक राजा हो" ...। जब कहानी समाप्त होती है तो यह विनोद वाक्य कहा जाता है—"ओड कहाणी मूंगा राणी, मूँग पराणा। सुणनियाँ कै सासरै का नाई अर बामण सै ही काणा।"

राजस्थानी लोक कथाएँ विविध प्रकार की है। उनकी दुनियां बड़ी चित्रमयी है।उसमे नाना प्रकार के रंग है। एक २ श्रेणी की कहानियो की संख्या भी बहुत बड़ी मिलेगी। सब से पहिले हम बाल-कथाओं पर विचार करते है। इनको दादी या नानी की कहानी कहना चाहिए। रात पड़े बच्चे अपनी बूढ़ी दादी को घेर लेते हैं। बूढ़ी दादी को भी अपने परिवार मे घिर कर बैठने मे कम आनन्द अनुभव नही होता। नीद लेने से पहिले बच्चो को कहानी सुनाना उसका नित्य का काम है। यह सरल मनोविनोद बड़ा ही मधुर होता है। इन कहानियो की दुनिया भी बड़ी रंगीन है। इस संसार में पेड़ पौधे मानव-भाषा बोलने है। पशु-पक्षी इसमे मानवीय जीवन बिताते है। परियां आकाश मे उड़ती हैं। देवता और राक्षस परलोक की वस्तु नही होते। सभी वस्तुएँ अपनी तरफ आकर्षण करती हैं। बूढ़ी दादी कहानी कहती जाती है और बच्चे हुंकारा

देते जाते है। धीरे २ निद्रादेवी उनको स्वप्न-लोक मे ले जाती है और दादी की कहानी भी बंद हो जाती है। कोई भी आदमी वडा होकर अपने वचपन की इन कहानियो को नही भूल सकता।

वाल-कथाओं मे सबसे पहिले वे कहानियाँ आती है जो एक दम छोटे शिशुओ को सुनाई जाती है इन कहानियों की दुनियां भी वच्चो की उम्र की तरह छोटी ही रहती है। इनके सभी पात्र वच्चो के परिचय से वाहर की वस्तु नही होते। ये कहानियाँ होती भी वहुत छोटी हैं। प्रायः इनमे किसी प्रकार की शिक्षा पर ध्यान नही दिया जाता। इनमे सरल कौतूहल मात्र रहता है। ऐसी जन-कथाओ का मनोवैज्ञान आधार वड़ा सवल होता है। पत्तो अर डगलियो, विल्ली अर चीड़ो, भैस को पोटो अर चीड़ी, चीडो चीड़ी, वांदरो वाँदरी अर 'नार', जूँ, कीड़ी को जुँवाई, धेरणी, चिरचिणो मिरचियो, चीड़ी अर चुस्सी, खुरपली, टीटण, चुस्सी मुस्सी भायली, गादडो अर कागलो, कीडी अर कमेड़ी, मीडको अर चीडी, मटकाचर, कागलो अर कोचरी आदि २ कहानियाँ इसी प्रकार की है। इनमे से उदाहरण के लिए "पत्तो अर डगलियो" नामक कहानी प्रस्तुत की जाती है।

"एक पत्तो अर डगलियो भायला हा। दोनूँ एक बाड़ी मे रहता। आधी आती तो डगलियो पत्ते नै ढक लेतो। मेह आतो तो पत्तो डगलिए न ढक लेतो। न वो उडतो अर न वो गलतो। एक दिन आँधी अर मेह दोनूँ सागै आया। पत्तो उडगो अर डगलियो गलगो।"

इन वाल कथाओ मे वहुत सी कहानियाँ पद्यमय होती है। वच्चों को ये पद्य बड़े प्रिय होते है। वे इन पद्यो को कंठस्थ कर लेते है। और वडे ही चाव से गाते है। इन पद्यों की भाषा वडी सरस होती है। साथ ही इनमे गजब की गति होती है। इनमे पुन-रावृत्ति चमत्कार भरती है। इन कहानियो मे भी शिक्षा की तरफ विशेष ध्यान नही दिया जाता। रोचकता ही इनकी खूवी होती है। कमेडी अर चुस्सो, चुस्सो चुस्सी, भैस की जूँ, झिडियो, कागलो अर चिडी, राजाजी की विल्ली, चुस्सी अर मीडकी, गादडो अर लूँकडी, आदि २ कहानियाँ इस श्रेणी की है। इनमे से उदाहरण स्वरूप मे "राजाजी की विल्ली" नामक कहानी प्रस्तुत की जाती है।

"एक विल्ली गैलै पर आकर वैठगी। थोडी सी बार मे गुड़ को गाडो आयो। गाडी वान वोल्यो-विल्ली विल्ली ए, वलद्या मारैगा। विल्ली वोली—मै तो राजाजी की विल्ली, मै तो चावूँ सक्कर लिल्ली; मेरो बांयो कान भरादे। गाडीवान वोल्यो-गेरो रे राँड के कान मे गुड़ की डली।

पछै सक्कर को गाडो आयो। गाडीवान बोल्यो–विल्ली विल्ली ए, वलद्या मारैगा। विल्ली वोली–मै तो राजाजी की विल्ली, मै तो चावूँ सक्कर लिल्ली, मेरो वांयो कान भरादे गाडीवान वोल्यो–गेरो रे राँड के कान मे सक्कर की चूंटी।

थोड़ी देर पछै तेल को गाडो आयो। गाडीवान बोल्यो–बिल्ली बिल्ली ए, बल्द्या मारैगा। बिल्ली बोली–मैं तो राजाजी की बिल्ली, मै तो चाबूँ सक्कर तिल्ली, मेरो बांयों कान भरादे। गाडीवान बोल्यो–गेरो रे राँड कै कान में तेल को टोपो।

बिल्ली आपका दोनूँ कान डाढा भरा कर आपकै बचियाँ कनै आयी अर गुड़ सक्कर तेल आगै गेर कर बोली–ल्यो रे बचियो, धाप धाप कर खाल्यो।"

इसी प्रकार एक दूसरी कहानी और दी जाती है जिसमे भी पद्य का प्रयोग होता है। कहानी का नाम है "गादड़ो अर लूँकती।"

एक गादड़ो जोड़ै की पाल पर आ बैठ्यो। जो कोई जिनावर पाणी पीवण नै आवै, गादड़ो ऊनै कहवै–पहली मेरी बड़ाई की साखी सुणावो अर पछै पाणी पीवो। गादड़ै की बडाई की साखी या ही—

रूपै की तेरी चूँतरी, सोनै ढोली है।
कानाँ मे तेरै गोखरू, जाणै राजा बैठ्यो है॥

विचारा छोटा जिनावर तिसां मरता साखी सुणा देता अर पाणी पीकर चल्या जाता। थोड़ी देर पछै एक लूँकती आई। लूँकती पाणी कानी चाली तो गादड़ो टोकी अर बोल्यो–पहली मेरी बडाई की साखी सुणा अर पछै पाणी पी। लूँकती बोली–मामा, जोर की तिस लाग री है। पहली कंठ आला करल्यूँ, पछै साखी सुणा देस्यूँ। गादड़ो बोल्यो–पीले। लूँकती धाप कर पाणी पी लियो अर पछै बोली—

माटी की तेरी चूँतरी, गोबर ढोली है।
कानाँ मे तेरे खूँसड़ा, जाणै डाकी बैठ्यो है॥

साखी पूरी करताँ ही लूँकती तो आगै अर गादड़ो लैर। भाजताँ भाजताँ लूँकती एक लम्बे से बाँस पर चढगी। पण गादड़ो टल्यो कोनी। बाँस कै नीचे बैठगो। लूँकती बोली–लूँकी चढ़गी बाँस। उतरै छठे मास। गादड़ै जबाब दियो–गादड मारी पालखी, मेंह धडूक्यां हालसी। थोड़ी देर और बैठ्या रह्या। पछै लूँकती दूर उतराध कानी देख कर बोली–कांधै जेली गंडक घणा, चाल्या आवै च्यार जणा। गादड़ो इतरो सुणताँ ही डर कर भागगो अर लूँकती बाँस पर सैं उतर कर आपकै घराँ आयगी।

राजस्थान की लोक प्रचलित बाल कथाओ मे एक वर्ग उन कहानियों का है जिनके अन्त मे कोई पद्य कहा जाता है उस पद्य मे उस कहानी का सार समाया रहता है। ये कहानियाँ संस्कृत के हितोपदेश एवं पंचतंत्र की कहानियों के समान हैं। इनमे शिक्षा की प्रधानता रहती है। ऐसी कहानियों का नाम भी उस पद्य के रूप मे ही बताया जाता है। कुछ पद्य इस प्रकार हैं—

बाप चराई केरड़ी, माय उगाही भीख।
तूं के जाणे बावली, बड़ै घरां की सीख ?॥१॥

बाजीगर को बाँदरो, छोड़ सक्यो ना जाल ।
तेरै लागै कामडी, मेरै ऊठै झाल् ।।२।।

तूं वणियाणी मै पाडियो, तू बेस्या मै भाँड ।
तेरै जिथाए मे भरै जिमेमे, धूल पड़ी ए राँड ।।३।।

सौ नै लेगो पंजो, पंजै नै लेगो पाव ।
अब के है वणियाणी, आव भालांई जाव? ।।४।।

साजी तो संज्या गई, लैर वसंता पूत ।
वन्दा भी अव जायगा, वाध कड्या के सूत ।।५।।

आधो घाल्यो ऊखली, आधो घाल्यो छाझ ।
सागर साटै धण गई, मधरो मधरो गाज ।।६।।

हिडहिड हंसै कुम्हार की, माली का चर रया बूट ।
तूं के हंसै कुम्हार की, किण कड वैठे ऊंट ।।७।।

इनमे से एक कहानी यहाँ प्रस्तुत की जाती है—एक सेठाणी बोरगत करती । बोरगत करताँ करताँ ब्याज को लालच पडगो । एक दिन एक जाट आयो अर बोल्यो—मांजी, भारी विपदा आ पड़ी । एक बर सौ रिपिया उधारा साधो । एक म्हीनै पाछै थारा दूध धोया ल्या देस्यूँ । अै पांच रिपिया ब्याज का अगाऊ ल्यो । जाट पांच को लोट आगै करयो । सेठाणी लालच पर आई । एक म्हीनै को ब्याज पाच रिपिया । झट पांच को लोट लियो अर सौ रिपिया ल्या गिणाया । जाट रिपिया लेकर चाल पड्यो । स्यातेक में ही जाट पाछो बायड्यो अर बोल्यो....माजी, या ल्यो चवन्नी ब्याज की अगाऊ अर पांच रिपिया और साधो । म्हीनै पछै ल्या देस्यूं । सेठाणी ओजूं लालच में आयगी अर चवन्नी लेकर पाच रिपिया ल्या दिया । जाट रिपिया सौ लेकर घरां गयो ।

एक ही म्हीनो बीत्यो । पाच सात दिन ऊपर गया । सेठाणी जाट के घरां गई अर जाट कन्नै से रिपिया माँग्या । थोड़ै दिना तो जाट देस्यूं देस्यूं करयो । पछै एक दिन बोल्यो—

सौ नै लेगो पंजो, पंजै नै लेगो पाव ।
अब के है वणियाणी, आव भलांईं जाव ?

इनके अतिरिक्त और भी बहुत ज्यादा शिक्षाप्रद बाल-कथाएँ लोक प्रचलित हैं । ऐसी जनप्रिय कहानियों के नाम यहां दिये जाते है ।

ना'र अर गऊ, बिल्ली अर ना'र का बचिया, ना'र की घूरी में गादडो, गादड़ पट्टो, पटकलो आठ काठ को आदमी, मोतियाँ की खेती, च्यार कागला, ना'री को दूध,

जाट का पन्द्रा बेटा' मूरख घोड़ो, गादड़ो गादड़ी, सुपनै का लाडू, गरुजी अर कागलो, स्याणों बांदरो, नेकी को बदलो, डमडमी कै डेरूं, गादड़ो अर कागलो, कुत्तो अर मीडो, भोज अर गादड़ो।

राजस्थानी लोक कथाओं मे परियों की कहानियां भी काफी हैं। दुनियां भर में ऐसी कहानियों का प्रचार है। आकाश में उड़ने वाली और इच्छानुसार रूप धारण करने वाली ये परियाँ बालकों को बड़ी प्रिय लगती है। इन कहानियों में रोचकता बहुत होती है। बच्चे इन्हें सुनते-सुनते मुग्ध हो जाते है। यहां कुछ ऐसी कहानियों के नाम दिए जाते है।—

सोनै को फूल, रात की राणी, हिरण अर परियाँ, पाप को फूल, राजा को सुपनो, सोनै को हिरण, सात परियां, सोनल परी, सात सहेलियाँ, परियाँ को देश आदि।

परियों की कहानियों की तरह ही बाल-जगत में जादू की कहानियों का भी प्रचार काफी है। राजस्थान मे जादू की कहानियाँ भी बड़ी संख्या में लोक प्रचलित हैं। इनमें बड़ा भारी आकर्षण होता है। मनुष्य की शक्ति से बाहर का काम जादू के जरिये सुगमता से किया जाना बच्चो को बड़ा प्रिय लगता है। ऐसी कहानियो मे मनोरंजन की मात्रा काफी रहती है। यहां कुछ ऐसी लोक-कथाओं के नाम दिए जाते है :—

मर्द को मर्द, दो अंगूर, दे दनादन, सोनी मीडो, कुमारदेव, डमडम जादूगर, चिपमचिपा, सोनै का महल, गलो, ईंट सैं सोनो, राजा भोज अर सुनेरी हिरण, लड़की अर नागदेव, ऊंट सै बकरियां, लग लग घोटा, बैद सै बकरो, दूध में साँप, मोती को खेत, राजा भोज सैं कुत्तो, बिना पाणी को महल, जादूराव फकीर, कामरूदेस आदि।

इनके अलावा बच्चों में ऐसी कहानियो का भी काफी प्रचार है, जिनमे डायन, भूत और राक्षस अपने कारनामे दिखलाते हैं। इनके अति मानवीय कर्म भी बड़े रोचक हैं। ऐसी जन-कथाओं में भूत प्रेतों के साथ मनुष्य भी रहते हैं। कभी कभी मनुष्य इनसे दबे रहते है और कभी २ इनको परास्त कर देते है। प्रायः कहानियों मे अंत में डायन भूत एवं राक्षसो पर मनुष्य की विजय होती है। ऐसी कहानियो मे बच्चे बड़ा मन लगाते हैं। वे देखते है कि डायन भूत एवं राक्षस कितने भी बलवान हों, अंत में उनको मनुष्य से हारना ही पड़ता है। यहां कुछ ऐसी जनप्रिय लोक-कथाओं के नाम दिए जाते हैं—

पंच वीरसिंघ, जिन्नां की बस्ती, भूत अर कूकड़ियो, भूत सेरणी, गुलगुगो, भूत अर बाणिए को बेटो, भूत की बेटी सैं ब्याह, भूत अर बामण, बामण अर राकसणी, बलवन्नी दानी, दानाँ की नगरी, बांडियो भूत, देवा राकसणी, जुरा राकसणी, ठाकर अर डाकण, न्यलियो राजा, कूवै मे च्यार भूतणी, चणोंकी दाल अर बांदरो कुंड की भूत, सात सुनार, राजा अर डाकण आदि।

उदाहरण स्वरूप यहाँ एक जन-कथा दी जाती है, जो बड़ी ही सर्वप्रिय है। इस लोक-कथा का नाम "न्योलियो राजा" है—

एक राजा के दो राणी ही। एक नै हो सुहाग अर दूसरी ने हो दुहाग। सुहागण के च्यार बेटा जाया अर दुहागण के जायो एक न्योलियो। राजा का बेटा बडा होया जद घोड़ाँ चढता अर न्योलिए नै सवारी करण नै देई एक बिल्ली। एक दिन च्यारूं कंवर घोड़ाँ पर चढ कर सिकार खेलण बन मे गया। न्योलियो भी आपकी बिल्ली पर चढ़ कर सागै गयो। सिकार लैर भागता भागता बै पाँचूं गैलो भूलगा। रात होगी जद एक छोटो सो घर देख्यो। कँवर बै घर मे जाकर बासो लियो। बो घर हो एक डाकण को। कंवराँ नै बेरो कोनी पड़्यो। डाकण भोत लाड-प्यार करकै जिमाय अर सुवा दिया च्यारूँ कंवर तो सो गा पण न्योलियो जागतो रयो। थोड़ी देर पछी डाकण उठी अर आपको छुरी काड कर धार करणै वारणै गई। न्योलियो सारी बात जाण गो। डाकण का बेटा भी बठै ही सूत्या हा। न्योलियो उठ कर आपकै भायाँ नै तो डाकण कै बेटाँ के गावाँ मे सुवा दिया और डाकण के बेटाँ नै आपके भायाँ की जगाँ सुवा दिया थोड़ी देर पछै डाकण छुरी लेकर आई और आपके ही बेटाँ के छुरी पहरा दी। न्योलियो बोल्यो—न्योलियो राजा जागै है, डाकण छुरी पलारै है। पण डाकण को काम तो पूरो होगो। न्योलियो आपके भायाँ नै जगाया अर दिन ऊगगो। सगला आपके घोड़ा पर चढ़ कर चल्या गया। डाकण रोवती रहगी। दिन मे गैलो लादगो। घराँ पूंचकर कंवराँ आपके बाप नै रातका सारा हाल सुणाया। राजा न्योलिए पर भोत राजी हुया। न्योलिए नै पाटवी कंवर कर्‌यो अर बैं की मा नै सुहाग दियो।

इनके अतिरिक्त जन-कथाओं मे हास्यरस की कहानियों की भी भरमार है। बीरबल, लाल बुझाकड़ और सेखसल्ली पर तो बहुत ही ज्यादा विचित्र-विचित्र कहानियाँ कही सुनी जाती हैं। साथ ही कंजूस बनिया, कायर राजपूत तथा मूर्ख सभासदो के बारे मे असंख्य लोक प्रचलित किस्से मिलेंगे। चमार, डोम, ढाढी, नायक आदि जातियो से सम्बंधित कहानियो की भी कोई गिनती नही। इनमे हास्यरस की धारा सी बहती है। ऐसी कहानियो मे राजस्थानी वातावरण बड़ा ही स्पष्ट रहता है। यहाँ कुछ हास्यरस की लोक-कथाओ के नाम दिए जाते है। —चमारी राणी, बीरबल की बेटी, धलिए की घेली, लालाराम खाती, रमज्यान सरीफ, च्यार चोर अर डूम, पंसेरीराम, धुणियो, बहरां की भाण, राजा के च्यार कान, चकमलजी सेठ, कुछनी बादरी, जाट अर काजी, पड़खाऊ, कठै निमट्टूं, काजी अर तेलण, जाट कौ चाद तौड़णो, कहाणी की मा माणी, जुंवाईजी, हाजी नाजी, गुड़मिठड़ी, झूठ बराबर मजा नही, बटउड़ो। फलूसो कुंवाड़ सारा-बेरी, लापसड़ो खाऊं, कंजूस जाटणी, लढाक पंडत, थानियो मलूकियो, चेलपरी, जाट नोकर, सीपली कुत्ती, जाट जाटणी, चमार चमारी, तेजाताण, बारठजी की बेटी

को ब्याह, चीड़ो अर चमार, चमार सासरै गयो, ढाढी अर जाट, कूंजड़ां को ब्याह, ढेढ हाकम, चमारां को धाड़ो, खोजां को धाड़ो, अमलदार, कुणसो ठाकर ना'र मारयो, सेखसल्ली की चोरी, काजीजी का च्यार नोकर, अंधेर नगरी, मूरख राजा, तीसमारखां, आदि ।

यहाँ एक हास्यरस की कहानी का उदाहरण दिया जाता है । एक राजा के च्यार हाकम हा । एक तेली, दूसरो कूंजड़ो, तीसरौ खाती अर चोथो माली । हाकमां की बड़ी चालबाल । राजाजी बड़ो आदर करै । रजपूताँ की कोई पूछ कोनी । लोग सीर नीचो करय्याँ हाकमाँ को हुकम उठावै । राजा मानै सो राणी ।

च्यारू बाँनै हाकमी करताँ घणा दिन होगा । एक बर राज में खबर आई कै एक राजा फोज लियाँ राज पर चढ्यो आवै है , गाँव में खलबली माची । बस्ती घब-राई । परजै काँपी । तेली हाकम नै खबर करी । हाकम बोल्या—घबरावो मतना । हाल ई के बात है ? तिल देखो तिलाँ की धार देखो ।

गाँव में भाँत भाँत की गल्लाँ उडै । दूसराँ खबर फेर आई । लोग दूणा घबराया । कूंजड़ै हाकम नै खबर करी कै बैरी राजा की फोज काँकड़ में आ बड़ी है, त्यारी करो । पण त्यारी कुण करै ? हाकम बोल्या—घबरावो मतना । हाल ई के बात है ? दिखाँ ऊंट के घड़ बैठै ?

बस्ती और भी दूणी घबराई । के उपाय करै ? लोग घराँ मे बड़ कर बैठगा । थोड़ी देर बाद फोज गाँव में आ बड़ी । हलकारो भाज कर खाती हाकम नै खबर करी । हाकम बोल्या—अब के बणै ? इत्ती देर खबर क्यूं करी ना ? खड़े खेजड़ा बेज कैंयाँ निकलै ?

बैरी राजा की फौज गड में बड़गी । कोई लड़य्यो, ना भिड़य्यो । राजाजी पकड़य्या गया । दूसरै राजा की गाँव में दुहाई फिरण लागी । माली हाकम के खबर पड़ी । हाकम बोल्यो—यो क्यारो तो पीवण को ही हो !

हास्यरस की कहानियों के अतिरिक्त हंसी के चुटकले राजस्थान मे असंख्य हैं । लोग बातचीत के दौरान मे इनका प्रयोग करते है । इनसे बातचीत रंगीन बन जाती है । ये चुटकुले छोटी २ कहानियो के रूप में कहे जाते है । यहाँ एक उदाहरण दिया जाता है—

स्याल् की मोसम । रात को बखत । एक डूम कूवै कन्नै बैठ्यो सी मरै । कन्नै एक सोड़ अर एक सारंगी । थोड़ी देर पछै सी को जोर होयो । आपकी सोड़ अर सारंगी लेकर रोती खेल् में बड़गी । आधी रात नै एक चोर आयो । चोर भी सी मरै । करम जोग सैं खेल् कानी गयो । डूम सूत्यो हो । चोर डूम की सोड़ उतारली अर सारंगी खोस कर भाजगो । डूम डरतो दाबल्गो । रात नै सी मरतो करड़ो होगो । दिन उग्यो

जद सी कम होयो । डूम नै होस आयो । खेलू मे सैं निकल कर तावड़ै कानी चाल्यो । सूरज भगवान नै हाथ जोड़ कर अरज करो—

उग रे म्हारा सूरज भाया, थाँ ऊग्याँ ऊबरसी काया ।
रात नै उग्यो एक लपोड़, दिवा दी म्हारी सारंगी सोड़ ।

इस श्रेणी की एक कहानी यहाँ और दी जाती है—

एक बाणिए के बेटो कोनी हो । लोग बोल्या—सेठ, तूं भैरूजी की ध्यावना कर, तेरे बेटो हो ज्यागो । बणियो भैरूजी के मंड मे गयो अर हाथ जोड़ कर बोल्यो—भैरू बाबा, जे मेरै बेटो हो ज्यावै तो तेरै एक भैंसो चढाऊं । दिन गया, दिन बावड्या । बाणिए के बेटो होयो । बाणियो भैसो लेकर भैरूजी कै मंड मे गयो । पण करै के । मंड मे कोई भी कोनी । कुणनै सम्हलावै । बाणियो भैंसे की हास भैंरूजी की मूरती के ही बाँध कर घराँ आगो । थोड़ी देर तो भैंसो खड्यो रयो । पछै तिसायो होयो, जद रास खैंच कर भैरूजी की मूरती उपाड़ ली अर मंड मे से ले चाल्यो । थोड़ी सी दूर आगै देवी को मंड आयो । देवी बोली—अरे भैरू भाया, आज तेरो ये के हाल ? भैसो कैयां उपाड़ ल्यायो ? भैरूं बोल्यो—ठीक है देवी ! मंड मे ही बैठी टरडका करै है । कदे बाणिएू नै बेटो देकर कोनी देख्यो ।

बोलवाल की कहानियों मे ही कहावतो से सम्बन्धित लोक कथाएँ है । प्रायः कहावतो के पीछे कोई न कोई घटना अथवा कहानी जरूर रहती है । कहावत मे उस कथा का सार रहता है । ऐसी कहावतें लोग बरम्बार प्रयोग करते है । कभी कभी कहावत के स्पष्टीकरण के लिए कहानी भी कही जाती है । ये कहानियाँ शिक्षाप्रद एवं मनोरंजक होती है । ऐसी लोक-कथाओं को एक खजाना समझना चाहिए और उसकी कहावत को उस खजाने की चाबी कहना चाहिए । परन्तु चाबी पास होने पर भी उस खजाने को खोलना कठिन काम है । कहावतो की कहानियो का पता लगाना साधारण बात नही । लोग कहावत तो बोल देते है परन्तु उसकी कहानी उन्हें याद हो हो ऐसी बात नही । फिर भी बहुत सी ऐसी लोक-कथाएँ ज्ञात है, जिनसे कोई कहावत निकली है । यहाँ कुछ ऐसी ही कहावतो के नाम प्रस्तुत किए जाते है ।

तुरत दान, महाकल्याण । ऊंचा चढ कर देखो, घर-घर यो ही लेखो ।
बे पाणी मुलतान गया । ओरूं जॉट चढसी सो सीरणी बोलसी ।
जा ए भैंस पाणी मे । पाणी पीकर के जात पूछणो ।
पाणी सिर पर फिरयां पछै के है । लेणो एक न देणा दो ।
सत्तर ना बहोत्तर मे । खानजादा खेती करै तेली चढै तुरङ्ग ।
पुन की जड़ सदा हरी । ईं गाव मे रहणो, हाँजी २ कहणो ।
सूत्या की पाडा जणै । जीका मरगा बादस्या, रुलता फिरै बजीर ।

पोपाँ बाई को राज। आप डूब्यो पांडियो ले डूब्यो जजमान।
दूधको दूध अर पाणीको पाणी। राई का भाव रात गया।
सारा आप २ कै भाग को खाबै। जैंकी लाठी बैकी भैंस।
सुसिए के तीन टांग। चार दिना की च्यानणी, फेर अंधेरी रात।
गडुवैं सै भेर होगी। देख मरदा की फेरी, अम्मा तेरी क मेरी।
रूप की रोवै, करम की खाय, रूप की धिराणी पाणी भरबा जाय।

नट-विद्या आ जाय, जट-विद्या कोनी आवै।

तरवार को घाव भर जाय, बात को घाव कोनी भरै।

उदाहरण स्वरूप इनमे से, "सूत्या की पाडा जणै" नामक कहावत की कहानी प्रस्तुत की जाती है—

एक जाट आपकी भैस लियां दूसरै गाव जावे हो। गेलै में ही रात होगी अर गाँव दूर हो। भैंस एक आध दिन मे ब्यावण हालो ही। बो एक जाँटी के नीचै बैठगो। थोड़ी देर बाद एक मीणो बै गैलै कर ही आपकी भैस लियाँ आयो। रामा-स्यामा होया। मीणै की भैंस भी एक आध दिन में ही ब्यावणहालो ही दोनूं जणा उठै ही रात बितावण की सोची आपस मे या पक्की करी क एक-एक जणो दो दो घंटा को पहरो-देसी। जे कोई सी भी भैस ब्यासी तो निगह राखसी। पहलो पहरो जाट को रयो। मीणो सोगो। जाट को पहरो बीत्यो जद मीणैं नै जगायो अर जाट सो गो। मीणै के पहरै में इसो संजोग होयो क दोनूं भैंस्यां ब्याई। मीणो सारा काम एकलो ही कर लिया। जाट की भैस ब्याई पाडी अर मीणै की भैस ब्याई पाडो। मीणो आपको पाडो जाट की भैस कै लगा दियो अर जाट की पाडी आपकी भैस के लगाली। पछै जाट नै जगायो। जाट आपकी भैस कै पाडो देख कर विचार कर्यो अर बोल्यो—भाया सांची है, सूत्यां की तो पाडा ही जणै। पण के बणै। दिन उगताँ ही दोन्यूं आप-आप कै गैले लाग्या।

कई बरस बीतगा। एक दिन जाट दूसरै गाँव लावै हो। बीच मे बै ही मीणै को गाँव आयो। जाट देख्यो मिलाँ तो सरी। मीणै के घराँ गयो। मीणो आवभगत करी अर कलेवो करण नै दही रोटी देई। जाट कलेवो करण बैठ्यो। पण पहलो गासियो लेताँ ही जाट को माथो ठिणक्यो–यो दही तो तेरी भैस को। चुपचाप दही रोटी खाकर चाल पड्यो। जाट सीधो ठाकराँ कनै पूंच्यो अर फरियाद करी। सारो किस्सो सुणायो। ठाकराँ घणो ही विचार कर्यो पण न्याय को रस्तो पायो कोनी। अन्त मे ठाकर सारो मामलो झंवरै के चौधरी कनै भेज्यो। झंवरै को चौधरी नामजादीक स्याणो हो। जाट झंवरै के गाँव गयो अर चौधरी नै सारी बात सुणाई। चौधरी बोल्योःभई न्याव

तो हो ज्यासी पण देर लागसी । अब तो तूं जीमःजूठ कर तेरै गांव जा, अर मै बुलावूं जद आ ज्याए । पहली आए मतना । जाट आपकै घरां चल्यो गयो ।

भंवरै को चौधरी दूसरै ही दिन सावतो बाजरो आपकी कुत्ती नै चवायो । कुत्ती की निगह राखी । कुत्ती निमटी जद भंगण नै बुलाकर बाजरो नाकै छंटायो । खेती की रुत आई जद वो बाजरो नाकै बुहागो । खेत पाक्या जद नाकै सिट्टी तुड़ाई अर सारो बाजरो कढा कर नाकै घरायो । इकरा काम पूरा करकै चौधरी जाट अर मीणै नै सरकारी हुकम सैं मिस ऐकर बुलाया । दोनूं आया । पहलै ही दिन कुत्तो हालै बाजरै की नाकै रसोई कराई अर खूब घी घाल कर मीणै नै जिमायो । मीणो चोखी रोटी खाकर न्हाल होगो । पछै मीणै नैं दूसरी जगां भेज कर जाट नै जीमण बुलायो । जाटीनै भी वा ही रोटी परोसी । जाट पहलो गासियो मुंह कानी करता ही उठगो अर गरम कर बोल्यो—मेरो धरम भिस्ट करण नै अठै बुलायो है के ? चौधरी को तो नाम भात वड़ो सुण राख्यो हो । चोधरी हाथ जोड़ कर बोल्यो भाया मन्नै माफी दे । तेरी पाडो को न्याव करण नै यो सारो ताम करणो पड्यो । अब तूं नाकै जीम । पाडी मेरी है । चौधरी जाट नै जिमा कर दोनूं जणा नै ठाकरां कन्नै भेज दिया अर सारी बात मांड कर कागद सागै भेज दियो ।

ठाकरां कन्नै मीणो अर जाट दोनूं पूंच्या । चौधरी को कागद दियो । ठाकर कागद बाच कर भोत राजी होया । आछ्यो दूध को दूध अर पाणी को पाणी कर्यो । जाट की भैंस जाट नै दीगई अर मीणै नै दंड दियो । ठाकर जाट नै बोल्या—भाया । आगै नै ध्यान राखणो, सूत्यां की तो पाडा ही जणै । जाट बोल्यो-ठाकरां या बात तो मीणै नै मै पहली भी कही हो पण मेरी मानी कोनी । अब राजडंड भोगै है ।

इनके अलावा राजस्थान मे स्त्री-समाज की कहानियाँ भी बहुत ज्यादा हैं । ये कहानियाँ महिलाओं मे ही कही सुनी जाती है । ये कहानियाँ है भी वड़ी महत्वपूर्ण । बहुत सी कहानियां व्रतो से सम्बन्ध रखती है । इनको स्त्रियाँ व्रत करके सुनती है । इन सब मे फल प्राप्ति का विधान अवश्य रहता है । यहाँ उन व्रतो के नाम दिये जाते है, जिनके लिए लोक कथाएँ प्रचलित है । ये व्रत-कथाएँ पुण्यमयी समझी जाती हैं । साधारणतया व्रतो के नाम इस प्रकार है—सूरज रोटै को वरत, आस को व्रत, गणगोर को बरत, सातूड़ी तीज, नागपांचै, गूगापांचै, बछबारस, दूवडी सातै, चानाछठ, गाज को वरत, होई को बरत, आसा भागोती, परदोस, पंचभिखो, पचीरथी, मंगलागोरी, सुहागी मावस, पुन्यू को वरत, चोथ को बरत, तिलकुट्टै तिलकुट्टै की चोथ, रिसी पांचै, गोपाठै; ग्यारस, वैसाख न्हाई बांदरी, आदि

इनमें से "आंवला नोमी" की कहानी उदाहरण के रूप में प्रस्तुत की जाती है—
एक साहूकार के सात बेटा हा । एक को नाव हो आवलियो राजा । आवलियो

राजा नित की सेर सोनै का आंवला दान करके रोटी खातो। करता करता आवलिए के घरका देख्यो–यो तो सारो घर लुंटा देसी। आंवलिए नै भोत समझायो पण वो मान्यो कोनी। पछै आवलिए के घर का ऊनैं काड दियो। आंवलियो जाती बखत आपकी लुगाई नै बोल्यो—मै तो जावूं हूँ। मेरै सागै चालै तो तूं भी चाल। पण आंवलिए की लुगाई नटगी अर बोली–तेरे सागै के खाऊँ? अठै तो खुरचण खाकर ही पेट भर लेस्यूं। आवलियो बोल्यो–तेरी खुसी। म्हे तो जावां हा। आवलियो चाल्यो जद गऊ गोबर कर दियो अर दूब हरी होगी। आवलिए की लुगाई चोखा सूण देकर आपके धणी की चोटी मे दूब का तार बाध दिया।

चालता चालतां आंवलियो एक बन मे आयो। अठै के दान करै? अर दान करे बिना बो क्यूं भी खावै कोनी। भगवान दया करके एक आंवला को गाछ खड़्यो कर दियो। आंवलियो सैर आवला तोड़ कर दान का नाकै धर दिया अर आवला ही खा कर सो गो। सो कर जाग्यो जद भगवान बठै सहर बसा दियो। आंवलियो ही बै सहर को राजा थरप्यो गयो। सहर मैं च्यारूँ कानी तरह तरह का धन्धा चालगा। आंवलियो राजा को बड़ो नाम होगो।

आंवलिए के बाप के देस मांय दुरभख काल पड़्यो। लोग भूखमरता डुलगा। आवलिए का मा बाप भाई भाभी डुलता रुलता आंवलिए के गाव मे मजूरी करण नै आया। आंवलियो सब की मजूरी दूणी कर दियो। लोग काम करे अर पेट भरे एक दिन आवलियो आपके बाप कनै चोपदार भेजकर कुहायो कै राजा नै नुहाण नै कोई सी तेरे बेटै की भू नै भेज। आवलिए को बाप आंवलिए की भू नै ही गड मे राजा नै नुहाण नै भेजीं।

आवलियो राजा न्हावण बैठ्यो अर बै की लुगाई ही नुहावण लागी। राजा बोल्यो–पहली मेरी चोटी खोल। आंवलिए की लुगाई चोटी खोली जद आपकै धणी नै पिछाण्यो। बै ही दूब का तार बँध रया हा अर आंवलिए के सिर में एक सोनै को बाल हो। बिचारी रोवै लागी। राजा पूछ्यो–भई तूं क्यूं रोई? वा सारी बात रोती रोती सुणादी। आंवलियो बोल्यो–मैं तो तनैं अतो कह्यो हो क मेरै सागै चाल पण तूं आई कोनी। भगवान मेरो तो सत राख दियो। आँवलिए की लुगाई बोली–अब आपां नै कुण पिछाणै? राजा बोल्यो–मैं पिछाण करवा लेस्यूं।

दूसरै दिन सब नै बेरो पड़गो। गाव में चरचा चाली। राजा लोगाँ नै भेला करय्या। आपकै घरकाँ न सब नै बुलाया। राजा बोल्यो–हे भगवान, जे या मेरी मा है, तो लोह वजर की काँचली के माँ सै दूध की धार सीधी मेरै मुँह मे आसी। दूध की धार मुँह मे आगी। पछै राजा बोल्यो–हे भगवान, जे या मेरी लुगाई है, तो बिना सुवासणी मेरो गँठजोड़ो जड़ ज्यासी। गँठजोड़ो जुड़गो। सारी नंगरी के लोगाँ नै पूरो

बिस्वास आगो। आँवलिए के घर का म्हैलां का धणी होगा। आँवलिए की लुगाई राजा की राणी बणगी।

हे भगवान जिसो आँवलिए को सत राख्यो अर सहर बसायो बिसो सै को राखिए अर सहर बसाए। कहतै को सुणतै को हुकारा भरतै को। अधूरी है तो पूरी करिए। पूरी है तो परवाण देये।

इनके अतिरिक्त महिला समाज मे कातिक मास की कहानिओ का अलग ही साहित्य है। ये कहानियाँ भी पुण्यमयी है। इनसे धर्म, नीति और सदाचार की बडी पुनीत शिक्षाएँ मिलती है। साथ ही ये कहानियाँ बड़ी रोचक भी है। कातिक स्नान करनेवाली स्त्रियाँ प्रातःकाल मंदिर मे जाती हैं। वहाँ वे हरजस गाती है और पवित्र कहानियाँ कहती सुनती है। इन कहानियो मे आचार के उत्तम उपदेश है। साथ ही ये कहानियाँ हैं भी काफी संख्या मे। यहाँ कुछ कहानियो के नाम दिये जाते है—हाकली ताकली, लिछमीजी, सूरजनारायण, म्हादेव पारबती, बालाजी, बिसपतजी, सनीसरजी, कातिक, तुलसाँ, बुधजी, नगर बसेरै की, लपसी-तपसी, न्यामदे-स्यामदे, सतनारायण, राम लिछमण, बुडिया माई, बिणजारो, नितनेम, कठियारो, गणेसजी, इल्ली घुणियो, सूरजनारायण की छोरी, सुसरो भू, पचभिखो, पचीरथी, तिलकमहाराज, रामबाई, धरम को भाणजो, अलूणी भू, धरम की भूखी अर दाम की भूखी, बिसराम देवता, बिनायक, मीडको मीडकी, पीपल पथवारी, कीड़ी नै कण हाथी नै मण, गंगा जमना आदि

उदाहरण के लिए यहाँ "इल्ली अर घुणियो" नामक कहानी प्रस्तुत की जाती है—

एक ही इल्ली और एक हो घुणियो। इल्ली बोली-आरे घुणिया, कातिक न्हावाँ। घुणियो बोल्यो—बाई तूँ न्हाले। तूँ तो मेवा मिस्टान्न मे रवै अर मैं मोठ बाजरै मे रेवूं। सो मै तो कोनी न्हावूँ। इल्ली राजा की बाई के पल्लै के लाग कर न्हा आती अर घुणियो बैठ्यो रहतो। कातिक उतरतै की पुन्यूँ नै दोनूँ मरगा।

इल्ली राजा के घराँ बाई होई अर घुणियो राजा को मीडो होयौ। बाई बड़ी हौई जद राजाजी वैं को ब्याह करय्यो। बाई सासरै जावण लागी जद राजाजी बोल्या—बाई कोई चीज मांग। बाई बोली—मन्नै तो यो थारो मीडो दे द्यो। राजाजी बोल्या—बाई मीडो तो मामूली चीज है और कोई बड़ी चीज माँग। पण बाई जिद करकै मीडो ही लियो।

राजा की बाई सासरै आगी। मीडै नै बांध दियो म्हैल के तलै। मीडो बाई न देखै जद बोलै—"रिमको झिमको ए, श्याम सुन्दर बाई घोडो पाणीड़ो प्या।" मीडै की बोली सुणकर राजा की राणी बोलै—'मैं कवै छो रे, तूँ सुणै छो रे, भाई म्हारा घुणिया कातिकड़ो न्हा।"

मीडै अर राणी की बात सुण कर द्योराणी जिठाणी राजा नै लगायो–या के राणी, जाण जुगारी, कामण गारी। मिनखाँ सैं तो बात सारा करै, या जिनावराँ सै बात करै। राजा बोल्यो–काना सुणी कोना मानूं। आँख्या देखी मानूं। दूसरै दिन राजा लुककर बैठगो अर मीडै की तथा राणी की पाछी बा ही बात होई—"रिमको झिमको ए, स्याम सुंदर बाई थोड़ो पाणीड़ो प्या।" "मै कवै छी रे, तूं सुणै छो रे, भाई म्हारा घुणिया कातिकड़ो न्हा।" राजा सारी बात सुण कर बाहर आयो अर राणी नै पूछयो–या के बात है? राणी सारी बात खोलकर बता दी। राजा भोत राजी होयो। आप कातिक न्हायो अर सारी नगरी नै कातिक न्हावण को हुकम दियो।

हे कातिक का ठाकर, राई दामोदर, इन्नी नै तूठ्यो जिसो से नै तूटिए। घुणिए नै तूठ्यो, जिसो कोई नै मतना तूटिए–कहतै सुणतै नै, हुंकारा भरतै नै।

इसके बाद राजस्थान की जन-कथाओं में वे कहानियाँ आती हैं, जिनको सुनने सुनाने के लिए मण्डली जुड़ती है। ये दंगल की कहानियाँ है। इनका कथानक काफी लम्बा होता है और उनमे कई प्रकार की अनेको घटनाएं रहती हैं। सभी मे गजब का आकर्षण मिलेगा। कोई कहानी ऐसी नही कि श्रोताओं का सुनते सुनते जी ऊब जाए। सब से पहिले प्रेम कथाओं पर बिचार किया जाता है। ये कहानियाँ काफी लम्बे समय से इस प्रदेश में लोक प्रचलित है। इन प्रेम कथाओं के साथ वीरता का तत्व मिला सा रहता है। प्रेमी तथा प्रेमिका के मिलन के पहिले काफी दिक्कतें प्रस्तुत होती है और अन्त में सुख के साथ कहानी समाप्त होती है। कई कहानियाँ दुखान्त भी होती है। इनमें ऐतिहासिक एवं काल्पनिक सभी प्रकार की कथाएं मिलेंगी। ये जन जीवन का भी बड़ा ही स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करती हैं। इनमें से बहुत सी कहानिया लिखित भी मिलती हैं। कई कथाओं पर तो काफी साहित्य तैयार हो गया है। राजस्थान की बातें साहित्य प्रेमियों से छिपी नही हैं। लिखित बातों के अतिरिक्त लोक प्रचलित बातें भी अगणित हैं। यहाँ कुछ प्रेमकथाओ के नाम दिए जाते हैं।

ढोलो नरवण, रिसालू नोपदे, माधवानल काम कन्दला, विक्रम ससिकला, खीवो आभल, लाछां काछवो, हीर रांझो, राणकदे खेंगार, चन्नण मलियागिरी, जगमल भारमा, सुलतान निहालदे, पूगलगड की पदमणी, नागमदे, सोनलदे, मोमल, मेह-ऊजली, सुधबुध सालेंगिया, बीरमदे सहजादी, पन्ना बीरमदे, भोज भानमती, बज्रमुकट पदमावती, रिसालू देलादे, कोड़मदे, तारा पिरथीराज, सयणी बीजानन्द, रूठीराणी, पदमणी रतनसेन, बीरसिंघ रतना, ससिपन्ना, नागजी नागमती, ऊमादे सांखली आदि।

इनके अतिरिक्त ऐसी कहानियां राजस्थान मे बड़ी संख्या मे लोक प्रचलित है, जिनमे ठग, चोर तथा धाड़ी लोगों का वृत्तान्त है। इनमें ठगों की कला, चोरों की चतुराई तथा धाड़ियो की साहसिकता का वर्णन रहता है। लोग नामी ठगों, प्रसिद्ध

चोरो तथा विख्यात् धाडियो को भुलाते नही। इनमे ठग और चोर तो अपनी बुद्धिमानी के कारण तथा धाड़ी अपनी वीरता के कारण लोक हृदय मे अपना भी एक स्थान सा बना लेते है। धाड़ियो की तो राजस्थान मे पूजा तक होती है। वे डाकू नही होते। डाका डालते है, तो भी धनिको से धन लेकर गरीबो को देते है। वे अपनी बात पर अड़ने वाले और प्रबल शत्रु से भी जा भिड़ने वाले साहसी होते है।

यहा कुछ ठगो की लोक कथाओ के नाम दिए जाते है।—बामण अर ठग नगरी, मैरिए की ठग लड़की, गफूरियो ठग, बावलो और ठग, जाट अर बाणियो, धोलिए की घेली, राजहंस, राजा भोज की लुगाई, चौधरी अर सूरतदास, लुगाई अर च्यार ठग, ठग और राजा, सैठाणी को मरणो, राणी अर चमार, सुनेरी हीरो, राजकुमारी अर ठग, बामणी और ठग की लुगाई, डेढ छैल को नगरी मे ढाई छैल, नागो नाड, धोबण अर तेली को लड़को, मुसाण मे मुरदो बोल्यो, मामो भाणजो, जाट अर बणियो, मूँछ मूँडी राँडड़ी, राजा भोज, राजा और नाई, दोनो अर ठग, ठग अर बणियो, नाई अर गूजर, जाट गूजर अर चमार भायला, मुरदो महात्मा आदि।

इसी प्रकार चोरो की कुछ कहानियो के नाम यहा दिए जाते है—

ग्यानी चोर, खप्परियो चोर, गंजियो चोर, खीर की चोरी, पीतल की थाली, भारमल चोर, चन्नण की चोरी, डमडमी मे चोर, कचौलै की चोरी, दिन मे चोरी मुखमल का गूदड़ा, सोनै की ईंट. दूध को कटोरो, चोर अर सेठाणी, लेलोट अर बकल बचेर, बुढिया अर चोर, दो जुंवाई, चमार के घरा चोर, मँगतियो कँवर, च्यार चोर अर फितूचन्द, गफूरखां अर जाट, सोनै को फूल, लालगरू कै घर मे चोर, चोरी सैं खाडो भरणो, डोकरी अर जाट खुमारमल को घर चोपट, टाटिया के छत्तै की चोरी, दिल्ली मे च्यार चोर, राजा अर चोर, खीवो बीजो आदि।

इसी प्रकार धाड़ियो की प्रसिद्ध कहानियो के नाम इस प्रकार है—

दुल्लो धड़ी, दयाराम धाड़ी, डूँगजी जुँहारजी, सोनै को मूँदड़ो, खपरू वजीर, बनेसिंघ, राजाभोज अर फूलादे, वजीरमन्न धाड़ी, उदाराम धाड़ी, नोलखोहार, हरफूल, धाड़ी कुसपाल, बामण अर धाड़ी, धनपालसिंघ मीयो अर मीणो, हणमानपरो, खादरखा धाड़ी, धाड़ी अर सेठ, उगमसिंघ धाड़ी आदि।

उदाहरण के लिए इन लोक कथाओ मे से एक कहानी "डेढ छैल की नगरी मे अढ़ाई छैल" नामक दी जाती है। इसमे एक चोर की चतुराई का वर्णन है—

एक राजा घणो स्याणो, बड़ो नामवरी हालो। एक दिन की बार राजा कन्नै एक कागद आयो। कागद बाँच्यो–डेढ़ छैल की नगरी मे ढाई छैल आयो है, ठगैगो, ठगावैगो नही।" राजा विचार करय्यो–चोर घणा ही देख्या। यो कोई बडो चोर है

जिको जरणा कर चोरी करै। कोतवाल नै बुलाकर हुकम दियो—आज नयो चोर आयो है। ढाई छैल नाम है। गांव मे चोरी नही होवै अर आज ही चोर भी पकड्यो जावै। नही तो नोकरी चली जावैगी। कोतवाल अरज करी—हुकम, भोत चोर पकड़ कर कैद कर दिया, यो चोर कठै जासी।

कोतवाल रात नै घोडै पर गस्त देवै। एक बजी। एक सूनी फूटी हेली के कन्नै सै निकल्यो। हेली मे चाकी पीसरण की आवाज सुणी। घोडो थाम्यो। उतर कर हेली मे गयो। देखै तो एक डोकरी फाख्या गाबा पैरय्या चाकी पीसै है। पूछय्यो—माई, तूँ कुण है? सारी नगरी सोवै तूँ फूटी सूनी हेली मे चाकी पीसरण कठै सैं आई। डोकरी जवाब दियो—भाया, मैं के आई राम मारय्यो बो ढाई छैल गैल पड्गो। बोल्यों—डोकरी मैं आधी रात पाछै चोरी करकै घोडै पर आवूँगा जिको दाणो दल कर त्यार राखिए, नही तो ज्यान नै खैर कोनी। हेली भी सूनी बो ही बताई। सो भाया, मै तो डरती अठै दाणो दलू हूं। तूँ कुण है? कोतवाल बोल्यो—भाई, तेरै भावूं कोई ही होवो। तूँ एक काम कर, तेरी जगा तो मैं बैठस्यूं और तूं मेरा कपड़ा बदल कर तेरै घरा जा। डौकरी बोली—भाया, तेरी खुसी। परण मेरी ज्यान की निगह राखिए। कोतवाल बोल्यौ—डौकरी, डरै मतना तन्नै कोई डर कोनी। डोकरी कपड़ा बदलकर चली गई। कोतवाल बैठ्यौ सूनी हेली में डोकरी का कपड़ा पहरय्या दाणो दलै। दो बज्या च्यार बज्या। कोई कौनो आयो। भाख फाटी कोतवाल देख्यो—मौत खारी होई। ल्हुकतो छिपतो आपके घरा गयौ। घर का यो हाल देखकर डरय्या। पाछै पिछारण कर गाबा दिया।

दूसरे दिन राजा कोतवाल नै बुलाकर चोर मांग्यो। चोर कठै? कोतवाल नै सारी हकीकत पूछी। राजा के झाल उठी कोतवाल नै बरखास्त करय्यो। पाछै फोजदार नै बुलाकर ढाई छैल नै पकड़रण को हुकम दियो। फौजदार हुकम सिर माथै लेकर गयो।

फोजदार घोडै पर चढय्यौ गस्त देवै। चोर नै गस्त देवै। चोर नै जरूर पकड़णो, नही तो राजाजी कोतवाल हाली करसी। रात की दो बजी बाहर की बस्ती माय एक कूवै कन्नै सै नीसरय्यो। एक आदमी कूवै की खेल में ऊकड़ बैठ्यो सी मरै। फौजदार कनै जाकर पूछय्यो—अरै भाई, तू अठै कुण है? रातनै एकलो बैठ्यो सी क्यूँ मरै है? आदमी बोल्यो—हजूर मैं गरीब धाणा को हूँ। मेरै तो ढाई छैल गैल पड़ रयो है। आज घरां जाकर बोल्यो—मै नगरी में चोरी करकै आवूँगा जद रात नै कूवै कन्नै जरूर मिलिए अर घोडै के खोंरो करिए। जे नही पायो तो ज्यान की खैर नही। सो मैं तो डरतो अठै ढाईछैल नै उडीकूँ हूँ। फोजदार बोल्या एक काम कर, तूँ तो मेरा कपड़ा ले अर मैं तेरी जगाँ खड्यो होस्यूँ। मैं फोजदार हूँ अर ढाई छैल नै पकड़रण आयो हूँ। वो आदमी मानगो और फौजदार का कपड़ा पहर तथा घोडै पर चढ़ आपके

फैलै गयै । फोजदारजी धाएक का गावा पैर कर खेल में बैठगा । घण्टा होई दो घण्टा होई । कोई भी कोनी आयो । फोजदारजी सी मरता करड़ा होगा । भाख फाटी जद लोग देख्या । देख कर पिछाण्या । राज मे खवर करो फोजदारजी की चर्चा चाली ।

तीसरै दिन राजाजी बोल्यो–नोकरां सैं के होवै ? ढाई छैल ने मैं पकड़स्यूं । रात होई राजाजी एकला चवूतरै वैठ्या । कनै काठ धरायो । च्यारूं कानी गस्त देवै अर चवूतरै आकर वैठज्या । एक वजी जद एक भलै घरां की भू हाथ में थाली अर थाली मे चालणी सै ढक्यो दीयो लेकर निकली । राजाजी कै कनै आई जद राजाजी उठ्या अर पूचय्यो–भाई तूं कुण अर रात नै कैया निकली ? वा बोली–जी के करूं ? द्योराण्यां जिठाण्या का ताना सहती सहती आधी होगी । मेरै टावर कोनी होवै जिको टूणो करण जावूं हूं । पण थारै कनै यो काठ को लकड़ो ओड वडो क्यूं पडय्यो है ? राजाजी बोल्या–यो काठ है । चोर नै पकड कर ईमे जड़स्या । वा बोली–जी, कैंया जड़स्यो ? एक वार मनै भी जड़ कर दिखावो । राजाजी बोल्या–यो लुगाया को काम कोनी, चोरां नै पकड़ कर जड़नै को काठ है । वा बोली–जी, मेरो मन करै है क देखूं, आदमी काठ मे कैया जड़य्यो जावै है । सो एक वर मनै जड़ कर दिखाद्यो । राजाजी देख्यो–बिचारी को मन है, दिखाद्यां । पण लुगाई नै के काठ मे जुडा, ल्लो आपां ही जड़य्या जाकर ईं को मन राखद्यां । वोल्या–भई तनै के जडा, म्हे ही जडय्या जाकर दिखा देस्यां । वा बोली–थारी मरजी । सारी तरकीव राजाजी नै पूछती गई अर राजाजी नै काठ मे जड़ कर तालो ढक दियो । ताली हाथ मे ली अर सटदे नीसरगी । राजाजी देख्यो–भोत खारी होई । जोर के ? काठ मे जडय्या पढय्या रह्या । दिन उग्यो लोग पिछाण्य्या । तालो तुडायो । राजाजी गड मे गया । नगर मे चरचा चाली । लोग घवराया ।

राजाजी म्हैलां जाकर हुकम दियो–नगर मे ढूंडी पीटद्यो । ढाई छैल का सातूं गुन्ना माफ । गड मे आकर मिलो अर ईनाम पावो । थोड़ी देर वाद ही एक जवान मोट्यार घोड़ै पर चढकर वजारूं वजार गड मे गयो । राजाजी नै नजर करी । आपको नाम बतायो । राजाजी भोत राजी होया, भोत वडी वक्सीस करी । राजा को वडो फोजदार करय्यो ।

राजस्थानी जन-कथाओ मे वीरता की कहानियाँ सर्वाधिक हैं । इतिहास के वीरो के अलावा लोक-विश्रुत नर वीरों की वातें भी वहुत ज्यादा कही सुनी जाती है । ये कहानियाँ ही राजस्थान की प्राण है । हजारों वर्षो के राजस्थान के जीवन ने न जाने कैसे कैसे शौर्य एवं वलिदान के आदर्श प्रस्तुत किये है । इन नर-सिंहो ने इस प्रदेश के लोक हृदय पर अधिकार कर लिया है और कई रूपो मे लोग उनका यश गाते हैं । लोक कथा भी इनकी कीर्ति गाथा का एक रूप है । यहां कुछ वीरता की कथाओ के नाम दिए जाते हैं—

उडणो पिरथीराज, जगदेव पंवार, कहवाट सरवहियो, अमरसिंघ राठौड़, गोरा बादल, बीरमदे, सुलतान, गूगो चौहाण, पाबू राठौड़, पदमसिंघ, अनाड़सिंघ, बखतावर-सिंघ, ऊंगो, ल्हालरदे, सोनचीड़ी का सूण, गरड़पंख, राणी नै देसूंटो, राजा अर कुम्हार, बिणजारो भोमसिंघ, सौनै की फली, बिणजारै को लड़को, हातमसिंघ चौहाण, जखड़ो मुखड़ो' राजा बलदेव, चकवो-चकवी, कंकर नै देसूंटो, सुजानसिंघ, चुण्डोजी, सादूलो भाटी, बलूजी चाँपावत आदि आदि । राजस्थानी ख्यातो मे एवं यहाँ की बातो में बीरता की कहानियों का तो कोई पार ही नही है । इनमे से एक कहानी "ल्हालरदे" नामक उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत की जाती है—

"अलसी कै ल्हालर नहिं होती, अलसी जाती ऊत"

गड चुटाले का ठाकर अलसी माँदा पड़्या । ओस्ता पाक्योड़ी । दुख पावै । भाईबंध भेला होया । ठाकराँ नै मनस्या पूछै, पण ठाकर बोलै नही । ठाकराँ के कंवर कोनी । एक बाई, नाँव ल्हालर दे । बाई पूछ्यो—बाबोसा, आपकी मनस्या बताओ । ठाकर बोल्या—के मनस्या बताऊं ? पूरी होती कोनी लागै । भाई बन्ध बोल्या—आप बतावो, पूरी करस्याँ । ठाकर बोल्या—मेरै दो बातां की मन मे रहगी । एक तो मै टोडरमल का कोनी गुवाया अर दूसराँ मै गुजरात में मूंगधड़ै का घोड़ा कोनी खेद्या । लोग बोल्या—पहली बात तो मामूली है । आप लड़को गोद लेवो अर टोडरमल का गुवावो, पण दूसरी बात की कोई हाँ कोनी भरै । मूंगधड़ै का घोड़ा खेदणो टेडी खीर है । ठाकर बोल्या—दोनूं बाताँ की पक्की होए बिना मेरा प्राण कोनी निकलै । अन्त मे ल्हालरदे बोली—बाबोसा, आप चैन पावो' आपका दोनूं काम मै करस्यूं । ल्हालरदे बीड़ो चाब्यो अर ठाकर मोक्ष पाया ।

सारा काम पूरा करकै ल्हालरदे आपके बाबोसा की मनस्या पूरी करणै की मोची । रात नै मरदाना भेष धारण करय्यो । घोड़ै पर चढी अर गड मे सैं निकलगी । कोईनैं भी सागै कोनी लियो । मूंगधड़ै को गैलो पकड्यो । चालताँ चालताँ कई दिन होगा । एक दिन एक ठाकर गैलै चालता मिल्या । ठाकराँ कै सागै खवास हो । दोनूँ ल्सालरदे को तपतेज देखकर ठमक्या । पूछ्यो—आप सिरदार सिध पधारो हो । ल्हालरदे सारी वात बताई । ठाकर भी मूगधड़ै का घोड़ा खेदण ही जावै हा । दोनूं जणा को एक ही काम । दोनूं पक्की करी—एक जणो घोड़ा खेदसी अर दूसरो पीठ झेलसी । घोड़ा दोनूँ आधा-आधा बाँटसी । ल्हालरदे कै पीठ झेलणो पाँती आयो ।

आखर मूंगधड़ै को बीड़ आयो । बीड़ मे घोड़ा देख्या । एक सै एक आला । दोनूं दोनूं भोत राजी होया । मूंगधड़ै कै ठाकरा को तप पड़ै । घोड़ा सुन्ना चरै । बीड़ में नगारो पड्यो । जो कोई घोड़ा खेदै, तो जाती बरियां नगारो बजावै । पछै दो दो हाथ होज्या । ल्हालरदे बोली—ठाकरां, आप चोखा घोड़ा लेकर चालो । गैल की भीड़ मैं

झेल झेस्यूं । ठाकर अर खवास घोड़ा चुग कर गैलै गेर दिया । आप लैर हो लिया । पछै ल्हालरदे नगारै पर डंका दिया । नगारो बाज्यो, जाणै इन्दर गाज्यो हो । मूंधगड़ै मे अचरज होयो । आज नगारै पर इतरा डंका देवण की हिम्मत कुण करी ? फोज चढी । बीड़ मे गया तो एक जोधजवान रजपूत घोड़ै पर खड़य्यो देख्यो । कोई सागै ना । मूंगधड़ै को ठाकर बोल्लो—भई तेरी जुवानी अर तेज देख कर तो जी भोत राजी होवै है, पण तूं काम करड़ो कर लियो । म्हारा घोड़ा खेद लिया । ल्हालरदे बोली—बीरां को तो यो ही काम है । ठाकरा फोज नै खपावण क्यूं ल्याया । मै घोड़ै पर खड्यो होकै मेरी साग गाड़ देस्यूं । आपको कोई भी रजपूत मेरी साँग पाछी काड्यो अर थारा घोड़ा पाछा ल्यो । बात ठीक उतरी । मूंगधडै का ठाकर मानगा । ल्हालरदे घोड़ै को चक्कर देकर साँग गाडी । कई जणा जोर अजमायो, पण साँग धरती मे अंगद को पग होगी । मूंगधड़ै का ठाकर भोत राजी होया । घोड़ा ल्हालरदे का होगा ।

ल्हालरदे विदाई लेकर चाली । गैलै मे ठाकर अर खवास मिल्या । लार की बात ल्हालरदे सुणाई । घोड़ा की पाती होगी । एक घोड़ो बाकी बच्यो । न ठाकर लेवै अर न ल्हालरदे लेवै । जिद होगी । ल्हालरदे तरवार को हाथ मार कर घोड़ै का दो टुकड़ा कर दिया । खवास पिछाण करी । मरद कोनी, लुगाई है । ठाकरां के कान मे कह्यो । ठाकर बोल्या—आपको गांव कुण सो ? ल्हालरदे जवाब दियो— गाव को नाम कोनी बतावां । ठाकर जिद करय्यो । ल्हालरदे बोली—म्हारी बात पूरी करण का बाचा द्यो तो गाव को नाम बतावां । ठाकर बोल्या—बाचा दिया । ल्हालरदे सारी बात सुणाई । आखर बोली—अब आप तो बणोगा कन्या अर मै .बीद बण कर जान लेकर आस्यूं । आपनै व्याह कर गड चुटालै ले ज्यासूं अर टोडरमल का गुवास्यूं या म्हारी बात है । सो पूरी होणी चाहे । ठाकर बाचा दे चुक्या । हाँ भरी अर आपके गांव कोटकिलूरै गया ।

व्याह को म्हूरत पक्को होयो । ल्हालरदे बीद बणी । सारा नेगचार गड चुटाले मे होया । पछै जान कोटकिलूरै चाली । ठाकर बीनणी बण्या । फेरा होया जान की खातरदारी होई । जान पाछी गड चुटालै आई । टोडरमल का गाया गया । अलसीजी की दोनूं मनस्या पूरी होई । ल्हालरदे मरदाना भेस उतारय्या । जनाना भेस लिया । सासरै गई । सुखचैन सैं ठाकर रवै लागा । ल्हालरदे के कंवर होयो । नाँव कढायो हल्ल । कंवर बडो होयो एक दिन सिकार नै गयो । बन मे न्हारी को बचियो देख्यो । मन मे करय्यो—यो ही तो हाऊ नही है के ? आज हाऊ नै पकडस्याँ । आगैसी जाकर न्हार के बच्चै नै पकड़ लियो । गलै रस्सो घाल कर गड मे लेगो । नगर का लोग देख्यो । गड की परगै देख्यो । आप सीधो रावलै मे गयो । आपकी मा नै बोल्यो—मा, आज मै हाऊ पकड़ कर ल्यायो हूं । ल्हालरदे बोली—ना लाला, यो तो न्हार को बचो है । ईं की मा ढूंढती होसी, बिचारै नै पाछो बन मे छोड कर आ । हल्ल पाछो गयो अर बन मे न्हार कै बच्चै नै छोढ कर आयो । नगरी का लोग बोल्या—सिंघणी के तो सिंघ ही जलमै ।

कोटकिलूरै के ठाकरां की बीनणी बणानो सहलो होगो।

राव गया, ल्हालर गइ, गया जमी से हल्ल।
सूरवीर तो चल्या गया, पड़ी रह गई गल्ल।

इनके अलावा बहुत सी लोक-कथाएं संत-महात्माओं के सम्बन्ध में हैं। उन में संतो का आचार तथा उनकी करामात का विवरण रहता है। कुछ नाम इस प्रकार हैं—फरीद अर खुजा, चम्पाकली, च्यार चोर अर महात्मा, नीलमदे, तपसी जाट, फिरोजखां अर तपसी, रामसा पीर, गूगोपीर, साहूकार संत, मूरख सैं महात्मा, भगत का भगवान, राम नाम जाट, लाडूबाबो, पूरण भगत, नरसीजी, मीरांबाई, गोपीचन्द, भरथरी, आदि।

इनके अतिरिक्त बहुत ज्यादा कहानियां विविध विषयों की है। के बड़ी मनोरंजक हैं। साथ ही वे काफी बड़ी भी हैं। ऐसी कुछ कहानियों के नाम यहाँ दिए जाते हैं—

असली अर नकली पूतली, ब्राह्मण अर कंवर, लकड़हारै को राजकुमारी सैं व्याह, गुवालियो राजा; राजा बिक्रम, ना'री को दूध, राजा भोज की चौदवी बिद्या, राजा भोजा की पंदरवी 'बिद्या, बाणिया बिद्या, जाट अर फूला-मालण, सात बेटी, मोरपंख, सोनल अर रूपल, नेकी को बदलो, लखटकियो, भली अर बुरी, सोनल को भिखो, सैरियो दुसैरियो, काँच को म्हैल, बामण की बेटी गादड़ै नै परणाई, जीवतो भूत टेमलो, चमार की बेटी राजा नै परणाई, भंवरै को जाट, ईं गाँव को पाणी इसो ही है, भावी, न्हात तो क्यूं पाता, ठाकर के सात जुंवाई, पंचों में परमेसर बोलै, कहानी का टक्का लागै, सीख को दाडू, जहमती, चोबोली राणी, चकवो बैण, खेमजी, सात चोक की हेली, राजा भोज, नीलम राणी, पंच कला, भोज अर नाई, तुलसियो जाट, ज्यालणसिंघ अर हरियो हूल, भड़भूंजो राजा, सेठ को स्याणो बेटो कुणसो. राजा को सुपनो, च्यार चोज सार, कुणसी रुत चोखी आदि आदि।

इस प्रकार हम देखते है कि राजस्थानी लोक कथाएं कई प्रकार की है। साथ ही हर प्रकार की जन-कथाओं की संख्या भी काफी बड़ी है इन जन-कथाओ मे जन जीवन की बडी स्पष्ट झाँकी देखने को मिलती है। जन-समाज की भलाई बुराई सभी कुछ इनमे मिलेगी। विविध प्रकार के मानव चरित्र भी अपना रूप इन लोक-कथाओं मे दिखाते हैं। साथ ही इनमे शिक्षा का भण्डार भी है। इनमें सबसे बड़ा तत्व कौतूहल का रहता है। फलस्वरूप ये कथाएं बड़ी ही मनोरंजक होती है। घटना-तत्व की महत्ता इन कथाओं को रंग देती है। साथ ही लोक प्रियता के कारण एक ही कहानी स्थान स्थान पर थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ भी कही और सुनी जाती हुई मिलेगी।

आज आवश्यकता इस बात की है कि इन लोक कथाओं को अधिक से अधिक परिमाण मे लिपिबद्ध किया जाय और इनके संग्रह प्रकाशित किये जाये, जिससे राजस्थानी संस्कृति के इस महत्वपूर्ण अंग की सुरक्षा हो सके।

८

राजस्थान के लोक नृत्य

काव्य, कला-कौशल और आमोद-प्रमोद के उत्सव राष्ट्रीय सुख और समृद्धि के सहचर हैं। जब देश का जन-साधारण अमन चैन से जीवनयापन कर रहा हो, आन्तरिक और वाह्य किसी प्रकार का उपद्रव न हो, सामयिक वर्षा से खेत प्रचुर अन्न उपजाते हो और सभी वर्ग अपने अपने कार्य मे निष्कपट व्यवहार करते हो, ऐसे स्वर्णयुग मे ही कलाओ का प्रादुर्भाव होता है। ललित कलाओं मे अग्रगण्य संगीत और नृत्य की कलायें तो आन्तरिक भावोन्मेष के बिना सम्भव ही नही है। जब किसी मादक स्पर्श से हृद-तन्त्री के तार छिड़ उठते है अथवा किसी मार्मिक प्रहार से वेदना के स्वर कम्पित हो उठते है तभी उन्मादक संगीत की लहरियाँ सहसा फूटकर बिखर पडती है। इसी प्रकार प्रफुल्लित अथवा उत्पीड़ित हृदय की भावनाये ही नर्तक के पदो मे चाचल्य, गति मे गरिमा, भाव-भंगिमा, अंगभंगियो, मुद्राओ तथा चेष्टाओ मे सहज सौन्दर्य और घुंघरुओं की छूमछनन मे राशि २ मादकता का रस संचार तरङ्गित कर सकती है। राजस्थान मुगल सम्राट अकबर के शासनकाल से ही सुख समृद्धि के इस जीवन का अंशतः भागी रहा है। प्रारम्भिक मुसलमान आक्रामको के समय राजस्थान का जनजीवन जिस प्रकार विच्छिन्न और आपदग्रस्त हो गया था, उसकी स्मृति अब विस्मृत हो चुकी थी। मुगलों के दरबार मे रहकर भारत के विभिन्न प्रदेशों मे शासन करते हुए राजपूत राजाओ ने प्रचुर सम्पत्ति एकत्रित करली थी जिससे उन्हें प्रजा से धन बटोरने की आवश्यकता नही पडी और राज्य की समृद्धि के साथ साथ ही आँग्ल-शासन मे यह राजनैतिक उथलपुथल कुछ और कम पडी, और राजस्थान तो प्रायः इससे अछूता ही रहा। इस लिये इन पाच छः शताब्दियो मे राजस्थान का लोकजीवन अपने स्वाभाविक प्रवाह मे चलता रहा और इसी समय राजस्थान की लोक कलाओ, संगीत नृत्य आदि ने विकास

पाया। राजस्थान के विविध भागों मे प्रचलित लोकनृत्य, चाहे उनके उद्गम की परम्पराओ को कितना ही दूर खीचा जाये, व्यवहारतः इन्ही शताब्दियो की देन है।

राजस्थान के लोकनृत्यों को स्थूल रूप से छै भागो मे विभक्त किया जा सकता है। हर विभाग के अनेक उपविभाग भी किये जा सकते है। पर इस विशाल प्रदेश के कोने कोने मे फैली हुई इन सांस्कृतिक परम्पराओ को व्यापक जाँच पड़ताल किये बिना कोई साधिकार धारणा बना लेना उपयुक्त नहीं होगा।

विभाजन के इस क्रम मे सर्वप्रथम गृहस्थों मे नाचे जाने वाले नृत्य आते है। छोटे-छोटे बालक-बालिकायें भी आनन्दमग्न होकर नाचते हैं। वर्षा के दिनों मे मेघाच्छन्न आकाश के नीचे गांवो की गुवाड़ मे बच्चे एकत्रित होकर कंधी जोड़कर नृत्य करते हैं और 'मेहबाबा' से वर्षा की याचना करते है। युवतियां तीज और गणगौर के अवसर पर, विवाहादि उत्सवो पर आनन्द विभोर होकर नाचती है। युवक डफो पर होली के गीन्दड़ नृत्य में तथा चौकचान्दणी मे गणेश चौथ के दिन विविध स्वांग भर कर उल्लास के साथ नाचते है। गृहस्थों के अधिकतर नृत्य उत्सवों, त्यौहारों तथा ऋतुओं से सम्बन्ध रखते हैं। सामान्य दिनो में भी आमोद प्रमोद के साथ कई नृत्य किये जाते हैं। विवाह के अवसर पर कुह्मार के घर चाक पूजते समय का नृत्य, बरात के बिदा होने पर लड़के के घर की स्त्रियो द्वारा किये जाने वाला टूंटिया नृत्य, होली पर लूहर और घूमर के नृत्य, पणिहारी का नाच, मेहदी का नाच, गणगौर के सामने किया जाने वाला नाच, दीवाली का दीपक नृत्य आदि कई नृत्य गृहस्थ स्त्रियों के अपने नृत्य हैं। इसी प्रकार होली के दिनों मे डफ की ध्वनि के साथ साथ घेरा बनाकर नाचना तथा नगाड़े की ध्वनि के साथ एक दूसरे के साथ डंडे भिड़ाकर घेरा बाँधकर नाचना और छारण्डी के दिन महरी का वेष बनाकर नाचना ये सब गृहस्थ पुरुषों के नृत्य है।

दूसरी श्रेणी में धार्मिक सम्प्रदायो का नृत्य आता है। राजस्थान मे जितने विभिन्न सम्प्रदाय हैं उतने शायद ही भारत के किसी अन्य भाग मे हों। सन्त और साधु-सन्यासियो ने अपने विचरण के लिये इस भूमि को अधिक उपयुक्त समझा। प्राचीन नाथ सम्प्रदाय से लेकर आज तक के सभी छोटे बडे मत मतान्तरों के धार्मिक गुरू यहां मिलेंगे। लोकजीवन के निकटतर होने के उद्देश्य से इन सम्प्रदायो मे भी अनेक ने नृत्य गीत के माध्यम को अपनाया।

गूगाजी, जिन्हें सांपो का देवता माना जाता है, राजस्थान की सभी जातियो द्वारा पूजे जाते हैं। इनके भोपा गोगाजी का निशान, मोरपंख, डमरू, कटोरा और लोहे की साकल लिये भादो के दिनों मे गांव गांव में चक्कर लगाते है। एक भोपा जिसे छाया आई हुई समझी जाती है झूमता हुआ नाचता है, तथा लोहे की जंजीर को सम की ताल पर जोर जोर मे अपने सिर पर पटक कर मारता है। जंजीर मे अनेक कांटे

लगे रहने पर भी कोई चोट नही आती। सिद्ध सम्प्रदाय के लोग अग्नि-नृत्य करनें में कुशल होते है। मनों ईंधन को जला कर अंगारे बना लिये जाते है और जलते हुए अंगारो के इस एक हाथ ऊंचे ढेर पर विचित्र लय मे नाचते हुए ये सिद्ध एक छोर से दूसरे छोर तक चले जाते है पर एक बाल भी नही जल पाता। उनके इस विचित्र नृत्य ने वैज्ञानिकों को चकित कर दिया था

भैरूंजी के भोपे मसक की बीरा बजाते हुए डमरू को ध्वनि और कमर मे लटकते हुए मोटे घुंघरुओ की आवाज के साथ मुख से भी विचित्र ध्वनि करते हुए नृत्य करते है। नाथपंथी कालबेलियो का पूंगी नृत्य, जिसमे एक दूसरे पर मन्त्रोच्चार द्वारा कंकरी फेक कर पूंगी बन्द करने की कला का प्रदर्शन भी किया जाता है, अपने ढंग का निराला ही नृत्य है। पाबूजी के अनुयायी थोरी लोग भी अपने प्रिय वाद्य रावण हत्था के साथ रात्रि के समय 'फड़' फैला कर गीत के साथ नाचते है। थोरी को स्त्री भोपी ऊचे स्वर मे गीत की छड़ियों को गुंजाती हुई फड़ के सामने लपक लपक कर नाचती है। दीपको से संजोई थाली लेकर भी इस समय नाचा जाता है। इसी प्रकार जोगी और रामदेवजी के भक्त अपने नृत्य करते है।

तीसरी श्रेणी पेशेवर जातियो के नृत्य की है। इनका सम्बन्ध अधिकतर राज दरबारों, सामन्तो, रईसो और सेठ साहूकारो से है। जहाँ से प्राप्ति की आशा अधिक हो वहीं ये अपना कौशल दिखाने मे रुचि रखते हैं। इन का जीवन अपने आश्रयदाताओ की दिनचर्या के साथ एकाकार सा ही हो गया है। पातर, वेश्या, नट, ढोली, भवाई, भाड, खोजे, रासधारी और ख्याल मंडलियो के लोग इसी श्रेणी मे आते है। इस श्रेणी के लोगो का नृत्य लोक शैली से तनिक भिन्न होकर शास्त्रीय शैली मे प्रविष्ट हो गया है पर मूल रूप मे इनके नृत्य भी लौकिक ही हैं और परिष्कृत रुचि के परिवारो मे इनका प्रचलन है।

पातरें राजाओ और सामन्तो के रनिवासो मे हुआ करती थी। एक पुरुष की कई स्त्रिया होने के कारण प्रत्येक की यह चेष्टा होती थी कि उसका पति उसकी ओर आकर्षित हो। इस उद्देश्य से सुन्दर युवतियो को गीत, नृत्य आदि कलाओ मे प्रवीण करा कर सुन्दर वस्त्राभूषणों से सजा कर पति के सामने नाच गाना करवाने के लिये रखा जाता था।

जिस स्त्री के पास सुन्दर कलावन्त पातर होती थी उसके पास पति के जाने की सम्भावना अधिक होती थी। इन पातरो के नाम भी कलापूर्ण होते थे जैसे प्रवीणराय, रंगराय, स्नेहलता आदि। पातरो अथवा पात्रो का यह वर्ग प्रश्रय के अभाव मे धीरे-धीरे अपने उद्देश्य से गिर गया और आजीविका के लिये हीन कर्म मे भी प्रवृत्त होने लगा।

वेश्याओ के नाच भी प्रायः पातरो के समानान्तर ही होते हैं। वैश्यायें प्रायः मुसलमान होने के कारण उनके कई नाच राजस्थान के बाहर के दरबारो से सीखे हुये होने के कारण विशुद्ध राजस्थानी नही कहे जा सकते। फिर भी कई नृत्य जैसे सपेरे का नृत्य, चीरे का नृत्य आदि राजस्थानी नृत्य ही है।

नटों का नृत्य शारीरिक कलाबाजियों से अधिक सम्बन्ध रखता है। कहते हैं ये लोग तेल पीते हैं इसलिये इनके अंग अंग में लचक और मरोड़ की अद्भुत क्षमता है। दो बाँस के छोरों पर बंधे हुए रस्से पर ढोलकी बजाकर नाचता हुआ नट तथा चिड़िया की तरह फुदकती हुई नटनी दर्शकों को चकित कर देते है। नटनी का मोर नृत्य तो बहुत ही सुन्दर होता है। हरे रंग की सलवार और नीले रंग की लम्बी बाहों वाली कुरती पहन कर सर पर कलंगी बाँधे दोनो पावो को ऊपर लटका कर वह हाथों के बल आँगन पर पंख फैलाये मोर की भाँति नृत्य करती है।

ढोली और दमामी अधिकतर सामन्ती के प्रश्रय मे रह कर विविध नृत्यादि से अच्छा मनोरंजन करते है। ढोला की ध्वनि के साथ सीखी लम्बी तान मे अलाप लेती हुई वृद्धा ढोलनी के सामने ही उसकी युवा पुत्रवधू या पुत्री घूमर आदि का नृत्य करती हैं।

भाँड लोग नकल करने मे चतुर होते है। स्वांग के साथ साथ नाचने मे भी वे निपुण होते है पर इनका नाच बहुत निम्नस्तर का ही होता है। खोजे लोग पुत्र जन्म के अवसर पर ढोलक बजाकर नाचते है। दो तीन खोजे तालियाँ बजाते हैं और एक उनके मध्य मे ढोलक और ताली की ताल पर जच्चा की विभिन्न मुद्राओ का अभिनय कर नृत्य करता है। गर्भ के नवें महीने के समय प्रसूता की विभिन्न आस्थाओं तथा प्रसूती के बाद की स्थिति का हास्यास्पद वर्णन नाट्य द्वारा बतला कर ये परिवार के व्यक्तियों का मनोरंजन करते हैं।

लोकनर्तकों के वर्ग मे भवाई का अपना विशेष स्थान है। जातियों से बहिष्कृत लोगो का यह संप्रदाय विविध नृत्यो की रचना मे बडा निपुण है। यजमान वृत्ति पर जीवन यापन करते हुए भी ये लोग बड़े स्वाभिमानी होते है। इनके प्रमुख नृत्य नाट्यों में सूरदास, डोकरी, शंकरिया, बीकाजी आदि है। फुटकर नाचो मे सात रंग की पगड़ियों का कमल बनाना, सात मटकों का नाच, जलती हुई बोतल का नाच तथा तलवारो का नाच है।

रासधारी और ख्याल मण्डलियों के नृत्य भी एक विशेष शैली के होते हैं। ख्याल मण्डलियों में बारहमासे का नृत्य और जबाव सवाल के साथ साथ तख्तो पर कूद कूद कर नृत्य होता है।

भिखमंगो, खानाबदोशो और जंगली जातियो के नृत्य चौथी पाचवो और छठी श्रेणी मे आते है। सासी और कंजर लोग कस्बो और गावो मे भीख मागते समय दाता को रिझाने के लिए नृत्य करते है। खानाबदोशो मे बावरी, साटिया, गंवारिया और गाड़िया लुहार अपने निजी नृत्य करते है। जंगली जातियो मे भील, मीणे, गिरासिया, रावत और मेरात लोग अपने विशेष नृत्य करते है। भीलो का गोरी नृत्य और युद्ध नृत्य अधिक प्रसिद्ध है।

इसके अतिरिक्त फुटकर नृत्यों में कच्छी घोड़ी का नृत्य, जालोर का ढोल झालर नृत्य, डीडवाने का तेराताली, चमारो का नेजा नृत्य, वनजारो का नृत्य, चित्तौड़ का तुर्राकलंगी नृत्य आदि अनेक प्रसिद्ध नृत्य है।

नृत्यो की इन अनेक भातो मे भी कतिपय नृत्य ऐसे है जिन्हें सहज ही इन सब के ऊपर देखा जा सकता है तथा जिनमे राजस्थानी संस्कृति की आत्मा के दर्शन हो सकते है। ऐसे नृत्य किसी भी देश मे अधिक नही हुआ करते। जैसे गुजरात मे गर्बा है वैसे ही राजस्थान मे घूमर का नृत्य नृत्यो का सिरमौर गिना जा सकता है। इसका सम्बन्ध लोक जीवन और लोकमानस से है। पेशेवर जातियो की कलाबाजियो तथा नपी तुली शास्त्रीय परिपाटियो से दूर रह कर घूमर जन जीवन की आत्मा मे प्रविष्ट हो जाता है। तलवारो और बताशो का नाच, जल भरे घड़े और दीपको भरी थाली का नाच, रस्से पर उछल कूद करने वाला नाच, चकित कर देने वाला अवश्य है, पर मोहित करने वाले नही। नृत्य भावनाओ की प्रफुल्लता का वाह्य रूप मात्र है। वर्षाकालीन संध्या को घने काले मेघो का गर्जन सुनकर मोर पिहू पिहू कह कर नाच उठता है, वृक्षो के सघन कुंज मे बैठी कोयल कुहू कुहू कर चहक उठती है और कन्हैया पक्षी आकाश पे फुदक फुदक कर झूम उठते है, तो मानव फिर अपनी उमड़ती लुई अभिलाशाओ को कैसे रोकले। ऐसे सुहाने समय मे वाह्य प्रकृति की मस्ती को देखकर नृत्य भी उसका साथ देने लगता है और यही स्वाभाविक नृत्य की सृष्टि होती है।

राजस्थान का घूमर नृत्य भी ऐसे ही किसी अवसर पर खेतो की पाल पर थिरक थिरक कर नाचने वाली किसी वन कन्या के अंग संचालन से उद्भूत हुआ होगा। मलमल के झीने तारो का लम्बा घूंघट डाले, चीर को लंहगे की तह मे भली प्रकार दाबे, कंचुकी के बन्धो को कसकर, पायल की ठुमक और झनक के साथ, नीचे झुक झुककर अंगो को लचकाती हुई, और दोनो हाथो से आह्लाद की मुद्रा को चुटकियो मे व्यक्त करती हुई कोई तरुणी जब हमजोलिया की टोली मे अपने अंग-सौष्ठव का प्रदर्शन करती हुई थिरकती हे तो राजस्थानी घूमर का रूप प्रत्यक्ष हो उठता है। पूर्ण विकसित शतदल की भाति अस्सी कली का घाघरा जब फैलकर चन्द्राकार हो जाता है और फिर दूसरी

मुद्रा मे ही सिमट कर जाघों से चिपट जाता है, तो घूमर की उत्पत्ति का अर्थ सहज ही बोधगम्य हो जाता है।

घूमर का ही एक रूप "मछली नृत्य" है, जिसमे अपने यौवन के अभिमान पर थिरकती हुई तरुणी पर जल देवता मुग्ध हो जाता है पर मछली उसका अपमान कर देती है। अपमानित होने पर वह जल का वेग बढ़ाकर क्रोधित होता है। चारों ओर वृत्ताकार मे मछली के रूप मे तरुणिया गाकर उसे मनाने का प्रयास करती है, पर वह नही मानता। पानी के भंवर फैलते है और मछली एक भंवर मे समा जाती है। इतने में ही नायक उसकी रक्षार्थ आता है पर उसके आने के पहले ही वह मर जाती है और इस प्रकार इस दुःखान्त नृत्य की समाप्ति होती है। चाँदनी रात मे बनजारों की तरुणियां अपने खेमों में इस नृत्य का अभिनय करती हैं।

इसी प्रकार का दूसरा नृत्य पुरुषों का है, जिसे डंडिया नृत्य भी कहते हैं। बीकानेर, शेखावाटी और जोधपुर के क्षेत्र मे इसका प्रचलन अधिक है। होली के दिनों में फागुन की शीतल रातों में छिटकती चाँदनी से दुग्ध धवल मैदान मे एक नगाड़ा लेकर वादक बैठ जाता है। उसके चारों ओर विभिन्न वेष भूषा मे हाथो में डंडे भिड़ाते हुए घूमते हैं। घूमर की भाँति उन्हे भी थोड़ा अंग-संचालन करना पड़ता है। पुरुषों की पोशाक मे बागा तथा पगड़ी होती है। बागे का घेर घूमते समय फैल कर नृत्य की शोभा बढ़ाता है। कई पुरुष स्त्रियों का वेष बनाकर घूंघट काढे नाचते है जिससे प्रतीत होता है कि प्रारम्भ में यह स्त्री पुरुषों का सम्मिलित नृत्य रहा होगा। पर आधुनिक सभ्यता से प्रभावित होकर पुरुषों ने स्त्रियों को इसमें सम्मिलित करना बन्द कर दिया और अब स्त्रियो का स्वाँग भर रह गया। कुछ भी हो पर यह नृत्य अपने ढंग का एक है और राजस्थान का राष्ट्रीय नृत्य कहलाने योग्य है।

झूमर और झूमरा नृत्य भी अत्यन्त सुन्दर हैं। झूमरा पुरुषों का वीर रस प्रधान नृत्य है और झूमरा नामक वाद्य यन्त्र की गति के साथ नाचाजाता है। पर झूमर शृंगारिक नृत्य है। इसमे कभी एक स्त्री व एक पुरुष नृत्य करते है, जो धार्मिक मेले आदि के अवसर पर देखा जा सकता है, और कभी पृथक पृथक वृत्ताकार बैठे गाते बजाते स्त्री-पुरुषो के झुण्ड में से उठ कर एक एक स्त्री और एक एक पुरुष नृत्य करते है। कभी कभी अकेली तरुणी ही यह नृत्य करती है।

मूलतया यह नृत्य गुर्जर जाति का है जो सिर पर हलका आभूषण, जिसे बोर कहते है तथा भुजाओ पर बाजूबन्ध की लूम की तरह फूलो का गुच्छा बाँधे नृत्य करती थी।

कोई नव यौवना जब उद्दाम वेग से झूमकर नाचती है, तो चारो ओर उसकी सहेलियां गाती हैं—

छोरा मार दिया रे थेई थेई करके।

नायक तूने थेई थेई करके मुझे मार दिया है। अर्थात् मेरे यौवन को तूने नृत्य ताल से जागृत कर दिया है। गूजर और अहीर जाति के परिवारो मे यह नृत्य आज भी जीवित है।

राजस्थान के इन रंगीन नृत्यो की खोज और जाव पड़ताल अभी पर्याप्त रूप से नही की गई और न उन्हे उचित प्रोत्साहन ही मिला। स्वतन्त्रता की इस पुनीत बेला मे इन नष्ट होती हुई सास्कृतिक निधियो के पुनरुद्धार की जितनी आवश्यकता आज है, उतनी शायद पहले कभी नही रही।

६

राजस्थान की गाने वाली जातियाँ

समाज के आदि काल से ही व्यक्तियो के बीच में श्रम का विभाजन होना प्रारंभ हो गया था। जिस दिन मनुष्य ने धरती से अपने दो हाथो को मुक्त करके, उसके द्वारा मेहनत का पहिला पाठ सीखा, उसी दिन से श्रम-विभाजन का आदि-बीज अंकुरित हुआ। तब से लेकर आज तक, निरन्तर श्रम-विभाजन का वह वृक्ष निरन्तर फैलता गया; उसकी शाखा-प्रशाखाएं शताब्दियो की तरह फैल गई और असंख्य पत्तियों मे, श्रम-विभाजन का स्वरूप बँट गया। वस्तुतः श्रम-विभाजन और उत्पादन के साधनों का विकास ही मानव की संस्कृति की मूल मे है। इसी के आधार पर आज संस्कृतियों का मूल्यांकन किया जाता है। यदि आज अमेरिका या रूस या ब्रिटेन उन्नत देश माने जाते है तो इसलिए कि उन्होने अपने यहाँ की उत्पादन-शैली को बहुत विकसित बना लिया है। और यदि उत्पादन-शैली की समस्या की तह मे जाने का प्रयत्न करेंगे तो पता चलेगा कि वस्तुत: श्रम-विभाजन का स्वरूप अत्यंत विस्तृत और सूक्ष्म हो गया है। किसी मोटर के कारखाने मे जो मजदूर एक बोल्ट बनाने का काम करता है, वह केवल बोल्ट बनाने के अलावा कुछ जानता ही नही है—इस 'विशेषता' तक पहुंचना आज की औद्योगिक-सांस्कृति के लिए अत्यंत आवश्यक है। किन्तु इन 'विशेषताओं' को यो ही आसानी से नहीं पा लिया गया। औद्योगिक-संस्कृति की स्थापना के पूर्व सामन्ती व्यवस्था, दास-प्रथा और इनसे भी पूर्व कृषि-युग और पाषाण-युग आदि का अस्तित्व रहा है। इन युगों मे, निरन्तर श्रम-विभाजन मे विकास होता रहा।

भारतीय समाज को श्रम-विभाजन की दृष्टि से देखने की कोशिश करते है तो सीधे ही हम वर्ण-व्यवस्था पर पहुचते है। एक विशिष्ट परिस्थिति मे, वर्ण-व्यवस्था, केवल श्रम-विभाजन की ही धार्मिक, पौराणिक एवं सामाजिक रूप थी। क्षत्रिय का

कार्य देश की रक्षा करना, वैश्यो का काम व्यापार, आदान-प्रदान, राज-काज का काम चलाना तथा ब्राह्मणों का काम समाज मे शिक्षा की व्यवस्था रखना था। साथ ही मे शूद्रो का कार्य, गंदगी को दूर करना रहा सब से गंदे काम इन्ही के जिम्मे रहे। वैदिक-काल मे वर्ण व्यवस्था का स्वरूप निश्चित रूप से बन चुका था। लेकिन इसी काल मे ऐसी परिस्थितियाँ भी पेश होने लगी थी, जो इस स्थूल श्रम-विभाजन की सीमाओ को तोड़ कर आगे बढ़ना चाहती थी। ज्यो-ज्यो मनुष्य ने प्रगति की, त्यो ही त्यो उसमे श्रम की अलग-अलग श्रेणियाँ बनती गई। महाभारत और रामायण काल तक आते-आते, अनेको धंधेवार जातियो का अस्तित्व बन चुका था। यह जातियाँ, किसी न किसी कार्य-विशेष को लेकर बनी थी। बुद्ध और महावीर तक यह विभाजन और बढा। बल्कि इन दो महान धार्मिक नेताओ के समय तक आते-आते तो मुख्य-मुख्य धंधो की पृथक-पृथक कौमे बन चुकी थी। कौटिल्य ने अपने अर्थ शास्त्र मे विभिन्न धंधो वाली कौमो के कर्त्तव्यो का उल्लेख किया है।

इससे हम इस परिणाम पर पहुँचते है कि समाज के निर्माण के साथ ही श्रम-विभाजन आया और समाज के विकास के साथ यह श्रम-विभाजन, अधिकाधिक विशेषता-पूर्ण बनता गया। धोबी, नाई, लुहार, कुम्हार, मकान बनाने वाले आदि-आदि कार्य-विशिष्ट जातियो के बन गये। इसी श्रम-विभाजन के अनुसार 'गाने' का जिम्मा भी कुछ विशिष्ट जातियो का बन गया। इन जातियो ने समाज के व्यक्तियो के मनोरंजन का जिम्मा लिया और संगीत को अपना जीविका-साधन बनाया। भारतीय परम्परा मे 'गन्धर्वों' के नाम से, हमारे संगीतज्ञो की 'जात' का सम्बन्ध जोडा जाता है। और यह गंधर्व शब्द बहुत पुराना है। श्रम-विभाजन का यह दौर, मुगल काल तक और मुगलो के बाद राजस्थान के विभिन्न राजाओ के काल तक आते-आते इतना फैल गया कि गाने वाली जातियो की सब खाँप, सब विभाजन, सब गोत्र या सब जाति गत विशिष्टताएँ पता लगा लेना आसान ही नही रहा। इस काल मे ही विभिन्न राजाओ, जागीरदारो, जातियो या धंधो के साथ गाने वालों का सम्बन्ध होता चला गया और वे उन्ही 'दातारो' के गीत गाते रहे। कही-कही यह भी पता चलता है कि गाने वाली जाति का प्रारम्भ किसी राजा के विवाह-विशेष से हो गया। कभी-कभी किसी भी जाति के व्यक्ति ने गाना स्वीकार कर लिया तो उस समय उसका जाति-बहिष्कार कर दिया गया और वह गाने वालो की श्रेणी मे आ गया। उसकी पीढ़ियाँ भी गाने वाली ही बनी रही।

पीढियो तक चले आने वाला यह गाने का पेशा, बड़ी अजीब बात थी। क्योकि कुम्हार या खाती की समस्या तो केवल इतनी ही है कि वह अपनी मेहनत से कारीगरी सीख ले। गाने मे मेहनत तो है ही, साथ ही कलात्मक अभिव्यक्ति होने के कारण,

उसमे केवल समय या लगन ही आवश्यक नही है, प्रतिभा भी वांछनीय है। फिर भी संगीत पीढियो की कला बन सका।

यहाँ यह बता देना अनुचित नही होगा कि लोक गीतो को दो प्रकार से समाज मे गाया जाता है। एक वे गीत जो—शादी, सगाई, त्यौहार आदि सामाजिक या पारिवारिक उत्सवो पर, घर के ही लोगो द्वारा गाये जाते है। तथा दूसरे वे गीत, जो परम्परा से गाने वाली जातियाँ, घर-घर जाकर, त्यौहारो के अवसर पर या यो ही मनोरंजन के लिए सुनाया करती है। गाने वालो की जातियो का विवेचन करते समय दूसरा रूप ही लिया जाता है। जाति या पेशेवर उन गायको की गायन-शैली मे और परिवार की गायन-शैली मे बहुत फर्क है। इन जातियों के गानों मे, केवल 'लोक-कला' के ही तत्त्व समाहित नही होते, बल्कि शास्त्रीयता का पूरा-पूरा पुट रहता है। फिर भी इन्हें लोक गीतो की श्रेणी मे ही गिना जाना चाहिए, क्योकि उनमे अभिव्यक्त भावो का रूप, औसत सामाजिक व्यक्ति की चेतना का अंश है। इनके गीतो की कल्पनाएँ या प्रतीक, धुन या स्वरूप—सब कुछ लोक-संस्कृति की नींव पर निर्मित है।

इस दृष्टि से, राजस्थान के गाने वालों को देखने का प्रयत्न करते है तो पता चलता है कि यहाँ क्षत्रियो के वंश हैं, जितने वैश्यो या ब्राह्मणो के वंश है—लग-भग सब से सम्बन्धी, पृथक-पृथक गाने वाली जातियो के भी भेद है। इसी प्रकार मुगल-युग से आज तक की परिस्थिति देखते हैं तो यह पता चलता है कि मुसलमान लोक-गायकों की जातियाँ भी उसी प्रकार मुख्य-धर्म की विशिष्ट धाराओ मे बँटी हुई है विशेषतया ढोली, रावल् और मिरासी तो कुछ ऐसी जातियाँ है, जो चौहानो, पँवारो, राठौड़ो, रॉव, भाटो, शेखो आदि कितने ही भागो मे बंटी हुई है।

राजस्थान की गाने वाली जातियाँ, आज बहुत पिछड़ी हुई है। सामाजिक रूप से, पिछली शताब्दियो से इनको हेय दृष्टि से देखा जाने लगा। इसके दो मुख्य कारण थे। एक तो संगीत को मुख्यतया विलासिता से सम्बन्धित समझा गया। बहुत-सी गाने वाली जातियो ने, गाने के साथ ही वेश्या-वृत्ति का पेशा भी अख्तियार कर लिया। गाने वाली जातियो के पतन मे इस स्थिति ने वहुत योग दिया। गाने वाली जातियो के पारिवारिक सम्बन्धो मे भी बहुत ढील बरती गई। दूसरी बात थी—एक साधारण सामन्ती मान्यता—कि वह हर व्यक्ति छोटा है—जो अपने परिश्रम से, खरी मेहनत करके, हाथ से मजदूरी करके, अपने साधन जुटाता है। और आदमी वह वड़ा है, राजा है—जो सारे सुखो को बिना मेहनत किये भोगता है। बड़े आदमी और छोटे आदमी की पहिचान भी यही बन गई। इस हालत मे अन्य मजूरी करने वाली कौमो की तरह गाने वाली कौमे भी आगई और उस समाजिक व्यवस्था में, जातियों को सामाजिक

आदर का भाव नही मिल सका। इसके अर्थ यह नही कि उनके सामाजिक महत्व को स्वीकार नही किया गया है। वस्तुतः मनोरंजन के बिना तो समाज रह ही नही सकता था; अतः उसका महत्व तो निरन्तर बना ही रहा।

बड़प्पन और छुटपन का खयाल, केवल दूसरी जातियो मे ही नही था, बल्कि स्वयं ढोलियो मे या लंगो मे या मिरासियो मे भी उसी प्रकार समाया हुआ है। जातिगत द्वेषो और बड़े-छोटो की हेय धारणाओ से राजस्थान की इन जातियो का सही-सही सामाजिक मूल्यांकन किया जाना सम्भव नही लगता। क्योकि प्रत्येक कौम के बीसवे तीसवें अंश तक का दावा है कि 'मैं सही हूं और दूसरे गलत है'। जैसलमेर की ओर दो प्रकार के लंगे हैं। इन दोनो मे किसी-किसी विभाजन के बीच खाने-पीने का व्यवहार है; लेकिन सगपण [विवाह] का व्यवहार नही है। कही-कही केवल खाने-पीने तक ही सम्बन्ध सीमित है। इस हालत मे दोनो प्रकार के लंगे स्वयं को श्रेष्ठ बताते है। वस्तुतः जातियो के विभाजन और उनके सम्बन्धो के विश्लेषण का जिम्मा समाज-शास्त्र का है। और निस्संदेह गाने वाली जातियो के पारिवारिक और सामाजिक सम्बन्धो के अध्ययन से खूब मनोरंजक और सुन्दर सामग्री प्राप्त की जा सकती है।

राजस्थान मे मुख्यतया निम्नलिखित गाने वाली जातियाँ है—

ढोली [हिन्दू]—वर्ण-व्यवस्था के अनुकूल ढोली भी अपना आदि-सम्बन्ध शिव एवं पार्वती से बिठाते हैं। वस्तुतः यह प्रयत्न अपनी जाति की प्राचीनता एवं श्रेष्ठता को सिद्ध करने के लिए किया जाता है। ढोली अपना जन्म गंधर्वो से मानते है।

अलग-अलग जातियो के अलग-अलग ढोली होते है। ये ढोली अपनी जाति के 'मिजमानो' के अतिरिक्त माँगने नही जाते। इनमे अनेक खाँपें है। मुख्यतया ये है : भेट, कडवा, काछेट, जाडिया, गीला, देहडा, देसार, बगार, तेरचा, डागी आदि। इन खाँपो के अपने जातिगत मिजमान थे। लेकिन अब इस प्रकार की स्वामी-भक्ति की सीमाएं भी टूट चुकी है। इनके अतिरिक्त भी गेड़ा, खाबी, डीरा, मोठिया, गोरेल, काठा, छिकिया, बेहल, सिया, रानीटा, धोला, कटार आदि आदि और भी विभाजन है।

इन सब खाँपो की शुरूआत के भी अलग-अलग किस्से है। उन किस्सो से केवल यही पता लगता है कि किन्ही विशेष अवसरो पर, या स्थानो पर, या विवाह के कारण, या व्यक्ति की विशेषता पर नई खाँप का निर्माण हो गया।

इस जाति का दर्जा बहुत नीचा माना जाता है। यह जाति, हर जाति से माँग सकती है। [विशेषता को लेकर चलने वाली खाँपों के अलावा] इसके अलावा एक जाति ऐसी भी होती है जो ढोलियो के यहा भी गाने के लिए आती है। इन्हें गढमंगा कहते है।

ढोली [मुसलमान]—राजस्थान के लग-भग सभी मुसलमान, किसी समय हिन्दू परिवारो से सम्बन्धी थे। मुसलिम आक्रमणो के समय, धार्मिक एवं राजकीय सुविधाओ तथा मुसलमानो की आकर्षक समता की भावना के कारण, कितने ही लोगों ने इस धर्म को अंगीकार कर लिया। मुसलमान ढोली स्वयं को सुन्नी कहते हैं। इनके रीति-रिवाज हिन्दू ढोलियों से मिलते-जुलते है। मुसलमान ढोलियों मे भी अनेकों भेद हैं।

ढाढी—हिन्दू-मुसलमान, दोनों धर्मो के अविलम्बी ढाढ़ी होते है। ढाढ़ी हिन्दू एवं ढाढ़ी मुसलमान। ढाढ़ी [मुसलमान] मलानूर कहलाते है। ढाढ़ियो की मुख्य खांपें वावरा, सिहोल, बगड़वा, डेडण, चमगा और मालणा आदि है। ढाढ़ियों के लिए यह प्रसिद्ध है कि ये युद्ध-भूमि मे, वीरो को उत्साह दिलाने के लिए गीत गाया करते थे। रण-भूमि मे, इनके गाने के तरीके को 'सिन्धु देना' कहते है। सिंधु वस्तुतः एक राग भी होती है, जो काफी उत्तेजनात्मक स्वरों पर चलती है।

मिरासी—इनकी खापें ढोलियो से मिलती-जुलती होती है। यह लोग मुसलमान हैं और पीढ़ियों से गाने का पेशा करते है। इस जाति के लोगों की संख्या बहुत नहीं है। जोधपुर, नागौर, डीडवाणे मे इनके अधिक घर है। कानोता, जोड़ा, कासेट आदि उप-जातियां हैं। यो तो ये लोग अपने को अरब देश का बताते है, लेकिन वस्तुतः यह लोग भारतीय ही थे. जिन्होंने दूसरा धर्म अपना लिया। इनकी एक उप-जाति कानोता—अपने पूर्वजों को गौड़ ब्राह्मण बताते है।

मांगणियार—यह भी मुसलमान हैं। संभवतया पहिले ये ढोली जाति से सम्बन्धी थे। क्योंकि इनकी खांपे उनसे बिलकुल मिलती हुई है, जैसे—देघड़ा, वेद, बारणी सोनलिया आदि। मांगणियार का मतलब होता है—मांगने वाला। इस जाति के लोग गाने वालों मे भी निम्न-कोटि के समझे जाते है।

फदाली—यह भी मुसलमान है। रहन-सहन, रीति-रिवाज मुसलमानो जैसे हैं। ये लोग कूजड़ों, कसाइयों तथा घाचियो के गवैये हैं। इनकी स्त्रिया गाने के लिए नही जाती। ऊपर लिखी तीनो कौमो के यहाँ ढोली गाने नही जाया करते थे, इससे फदाली कौम का आविर्भाव हुआ होगा। ये लोग मुसलमानों के धार्मिक उत्सवो के समय, हरे व लाल झण्डे लेकर गाते हुए जुलूस निकालते हैं। पीर और मीर आदि की आराधना को जाते समय भी, मुसलमान इनको गाने के लिए आमंत्रित करते हैं। अजमेर के मेले मे अनेको फदाली इकट्ठे होते हैं।

कलावत और कव्वाल—कलावत और सही रूप संभवतया कलावंत है; अर्थात् कलावान। इनकी दो उपजातियां है: एक हिन्दू और दूसरी मुसलमान। गौड़ ब्राह्मण और टाक सुल्तान। कहते है कि कलावतों की इसी जाति मे तानसेन का जन्म

हुआ था। इस जाति मे आज तक गाना सीखने वाले के, तानसेन के नाम का डोरा बांधा जाता है।

कहा जाता है कि कव्वालों का आविर्भाव भी कलावतों से हुआ। अमीर खुसरो स्वयं संगीत के महान विद्वान थे। उन्होंने सितार जैसा सुन्दर वाद्य-यंत्र बनाया। उन्ही के काल मे, मजलिसों मे, सामूहिक रूप से सूफियो की कव्वालियाँ शुरू हुई। कलावतो के घराने मे अधिकतर शास्त्रीय संगीत की परंपरा सुरक्षित रही। ये लोग अमीरो की नौकरी में रहे और ध्रुपद गाने मे सिद्धहस्त हुए। इसी जाति की उपजाति के वंशज—डागर-बन्धु आज भी ध्रुपद शैली की गायकी के प्रसिद्ध गायक है।

इस जाति मे हिन्दु-मुसलमानो का एक अनोखा मिश्रण है। नामो मे कुछ 'खा' लगाते है तथा कुछ लोग 'सेन'; जैसे—रहिमन खाँ और अमृत सेन। इन लोगों मे से जो संगीत के सिद्धान्त-पक्ष से वाकिफ होते हैं, उन्हें पोथी-पंडित कहा जाता है।

लंगा—ये लोग सिन्धी या राजस्थान की सीमा पर बसने वाले मुसलमान है। लंगों की उप-जातियाँ या खाँपे जाति विशेष मे बँटी हुई है। जो लोग चौहानों मे गाने जाते है, वे दूसरी जाति के यहाँ गाने के लिए नही जाते। इसे अपमान समझा जाता है। लंगो मे भी दो वर्ग होते है। दोनो अपने को एक दूसरे से श्रेष्ठ बताते हैं। ये लोग भी हिन्दुओ से ही मुसलमान हुए। इन लोगो मे भी शास्त्रीय संगीत का ज्ञान होता है। ये लोग सुबह लाखाफूलाँणी, कागा कोटड़ा; दोपहर को सारंग और संध्या को श्याम-कल्याण गाते है। इस प्रकार का इनमे विधान है। ये लोग गाने के अलावा खेती भी करते है।

पातर—गाने को अपनी जीविका-साधन बनाने के साथ ही जिसने अपने शरीर का क्रय-विक्रय भी प्रारम्भ कर दिया, उसे पातर कहा गया। स्वयं यह पेशा करने वाली स्त्री पातर कहलाई तथा उनके भाई-भतीजे जागरी कहलाये। पातरों मे भी सामन्त-काल मे अपने-अपने स्वामियो के प्रति स्वामि-भक्ति थी। उसी कारण विशेष पातरो ने अपना सम्बन्ध विशेष जाति से ही रखा। उन्होने गाने के लिए, गाना अपना ध्येय नही रखा बल्कि विलासिता की सामग्री के रूप मे, गाने का आकर्षण अवश्य बनाये रखा। पातर और जागरियो के धार्मिक विश्वास भी अत्यंत पवित्र होते है। उनको अपने पेशे के कारण हीन-वृत्ति का अनुभव नही होता।

कंचनी—ये मुसलमान वेश्या है। इनका नाम कंजरी भी है। इनके भाई-बन्धु कंचन कहलाते है। कंचन लोग; अपनी बहिनो को गाना सिखाने और उनके साथ सारंगी आदि पर संगत का काम करते है।

नट—अपने शरीर को चुस्त व फुर्तीला बनाने मे नट जैसी अन्य कोई कौम नही है। आधुनिक सरकस मे यदि इनको स्थान मिल सके तो कितने ही आश्चर्यजनिक करतब दिखा सकते हैं। नटों में गाना-बजाना भी होता है। यह जाति भी हेय दृष्टि से देखी जाती है। नटों मे भी गुजराती नट अलग होते है। इनका काम गाना-बजाना अधिक होता है।

रावल—रावल भी वस्तुतः एक ऐसी कौम है जो प्रत्येक ऊँची कही जाने वाली कौम के साथ जुड़ी हुई है—जैसे राजपूतों के रावल होते है; चारणों या भाटो के भी रावल होते हैं। ये लोग अपनी-अपनी विशिष्ट जातियों मे गाना-बजाना व रामत करते है।

भँवाई—यह एक नाचने वाली कौम है जो मेवाड़ में मिलती है। यह कौम भी रावलो की तरह है। राजपूत या जाटो के अलग-अलग भंवाई होते है।

इसी प्रकार राजस्थान मे अनेको गाने वाली जातियाँ है, जिनका प्रमुख पेशा ही या जीवन की कमाई गाना-बजाना या लोगो का मनोरंजन करना है। निश्चय ही पिछले दिनो की आर्थिक-प्रगति, औद्योगिक विकास और जनवाद की स्थापना के कारण ये गाने वाली जातियाँ, अपने सच्चे स्वरूप को खो चुकी है। लेकिन गाँवों में उनका आज भी मुख्य स्थान है। क्योंकि वहाँ सामन्ती संस्कारों को अभी पूरी परा-जय नही मिली है। सिनेमा के प्रभाव से, इन जातियों ने, अपने पुश्तैनी गीतों को छोड़ दिया है। कमाई के अभाव मे, यह पेशा भी 'पार्ट टाइम' काम की तरह बना लिया गया है।

ये जातियाँ आज बहुत ही हीन अवस्था मे है। हीनता का भाव स्वयं इन जाति के लोगो मे इस गहराई से जम गया है कि इनसे ठीक से व्यवहार करने पर भी, इन्हें महसूस नही होता कि मानवोचित व्यवहार आज की आवश्यकता बन गया है। लोक गीतों के संर-क्षण और प्रचार मे इन जातियो का विशेष योग रहा है।

अन्त मे, यह कहना असंगत नही होगा कि गाने वाली जातियों के सामाजिक अध्ययन की ओर संभवतया यह पहला प्रयत्न है। अवश्य ही इस विषय पर गंभीर खोज करने की आवश्यकता है। 'आइने अकबरी' मे गाने वाली जातियो का उल्लेख आया है और ये नाम बताये गये है : पेकार, सहकार, कलावंत, ढाढ़ी, कव्वाल, हुरकिया. ढोम-निया, तेरा ताली, नटवा, कीरतनिया, भगतिया, भँवईया, भांड, कंजरी, नट, बहुरूपी बाजीगर।

इस उल्लेख से पता चलता है कि अकबर के समय मे, गाने वाली जातियो का बड़ा समूह बन चुका था। लेकिन इस के पश्चात्, इन जातियो के विषय मे, इतिहास बिलकुल चुप है। वस्तुतः भारतीय संगीत के पुनरुत्थान के लिए आवश्यक है कि इन जातियो का केवल सामाजिक, आर्थिक और वंशानुगत अध्ययन ही नही, बल्कि साथ ही इनकी विशिष्ट संगीत पद्धतियो का भी वैज्ञानिक अध्ययन किया जाय।

—

१०

राजस्थानी रंगमंच

रंगमंच एक व्यापक शब्द है, जिसका तात्पर्य उस प्रवृत्ति से है जो जनता की आनन्दमयी भावनाओ को कला के माध्यम से मूर्त रूप में तथा सार्वजनिक ढंग से अभिव्यक्त करती हो। इन प्रवृत्तियों मे नाच, गान, नाट्य, खेल तमाशे, व्यंग आदि सम्मिलित है। राजस्थान इस दृष्टि से भारत के किसी भी राज्य से पीछे नही रहा है बल्कि उसने रंगीन राजस्थान होने का बहुत ऊँचा दर्जा भी प्राप्त किया है। प्रत्येक राजस्थानी के जीवन मे यदि रंग नही होता तो शायद वह राजस्थान की भौगोलिक और प्राकृतिक अवस्थाओं के कारण बहुत अधिक विकल और कुंठित हो जाता। प्रकृति ने जिस अनुपम प्राकृतिक आनन्द से राजस्थान के निवासियों को वंचित रखा उसी आनन्द को उन्होने रचनात्मक प्रवृत्ति से प्राप्त किया। जो रंग उसे प्रकृति मे उपलब्ध नही हुआ उसे उसने अपने वस्त्रों के रंग-वैविध्य से प्राप्त किया, जो आनन्द नदियों, घाटियों, पहाड़ियो तथा सुरम्य स्थानों के भ्रमण तथा अवलोकन से प्राप्त नही हुआ, उसे उन्होंने अपने स्व रचित गीतो, नृत्यों, नाट्यो तथा अन्य रंगमंचीय व्यवस्थाओ से प्राप्त किया। यही कारण है कि राजस्थान ने अपने निवासियो की वेशभूषा और उनकी राग-रंगीनियों के कारण रंगीन राजस्थान की पदवी प्राप्त की।

राजस्थान की रंमंचीय प्रवृत्तियाँ नाना प्रकार से प्रकट हुई है। आजादी से पूर्व राजस्थान राजा महाराजाओं का प्रदेश था। उसकी अनेक इकाइयो की अनेक विशेषतायें थी। सारा दिन राजा महाराजाओ के इर्दगिर्द चलता था, राजा बहुत बड़ी हस्ती माना जाता था, उसकी शान मे अनेक बातें होती थी, उस व्यवस्था में जन कल्याणकारी कार्य भी होते थे परन्तु उनसे कहीं अधिक राजा के हित की बाते ही हुआ करती थी, उसके निजी मनोरंजन के अलावा उसकी शान बान के लिये भी अनेक रागरंगों की व्यवस्था

होती थी, अच्छे-अच्छे गायक, नर्तक, कवि, नाट्यकार, खेल तमाशा करने वाले तथा वाद्यकार उसके राज्य की शोभा बढाते थे। इन कलाकारो का जनजीवन से सम्पर्क कम था। वे अधिकतर व्यक्तिगत साधना, प्रतिष्ठा तथा आर्थिक लाभ ही मे लीन थे, परन्तु फिर भी उनके कारण कला को प्रोत्साहन अवश्य मिला। ये कलाकार और उनकी कलायें ऊँचे दर्जे को प्राप्त हुईं, उन्हे ऊँचे से ऊंचे पद अवश्य मिले परन्तु सार्वजनिक रंगमंच की दृष्टि से उनकी देन नही के बराबर थी। रंगमंच की प्रवृत्तिया यदि व्यक्ति विशेष या उससे संबंधित समुदाय के लिये ही मर्यादित रहती हैं तो असल माने मे रंगमंचीय प्रवृतियाँ नही कहलाती, सच्चे और वास्तविक रंगमंच की दृष्टि से उनका सार्वजनिक स्वरूप होना अत्यंत आवश्यक है। ऐसी ही प्रवृत्तिया नकल या आडम्बर के रूप मे छोटे-छोटे जागीरदारो, धनिक वर्गों तथा संपन्न घरानो के साथ भी जुड़ गईं और मनोरंजन की दृष्टि से कलाकारों का एक ऐसा वर्ग बनगया जिसका काम नाच गा कर अपने निर्दिष्ट यजमानो अथवा आश्रयदाताओ को मनोरंजित करके अपनी आजीविका उपार्जन करना हो गया। यह स्थिति न केवल शहरो मे बल्कि गाँवो मे भी प्रचलित हो गई और कलाकारो का एक विशेष वर्ग ही बन गया।

परन्तु इस स्थिति से ऊपर भी एक विशेष बात जन जीवन मे पारिलक्षित हुई, विशेष करके गावो मे और कुछ शहरो मे भी वहा की जनता की ललितप्रवृत्तिया त्योहार, पर्व तथा सार्वजनिक समारोहो मे नाना प्रकार से अभिव्यक्त हुई। इन वृतियो मे भी धार्मिक और सामाजिक दृष्टि से राजा, ठाकुर, जागीरदार तथा संपन्न वर्ग जुडा हुआ था, परन्तु उनका कोई हानिकर प्रभाव इन प्रवृत्तियो के साथ धर्म और परंपरा जुड जाने से नही हुआ, बल्कि कुछ हद तक उन्हे अत्यधिक रंग देने मे लाभदायी ही सिद्ध हुआ। ये प्रवृत्तिया सभी राज्यो मे गणगौर जैसे त्यौहारो के साथ जुड़े हुए सामूहिक गणगौर, लूर तथा घूमर नृत्यों मे दृष्टिगत हुईं। होली के साथ जुडे हुए शेखावाटी की गीदड़ तथा अन्य राज्यो के गेर जैसे सामूहिक नृत्यो मे प्रकट हुईं, ये ही प्रवृतिया शेखावाटी के गणेश चतुर्थी पर होने वाले चौक चादनी जैसे सामूहिक नृत्यो, रामदेवरा, रूणीचा, चारभुजा तथा अन्य अनक मेलो ठेलो मे होने वाले सामूहिक नृत्यो, गीतो और खेल तमाशो मे प्रकट हुई। सार्वजनिक और लोक रंजक रंगमंचीय प्रवृत्तियो के नाना रूप गावो और शहरो मे जन जीवन के साथ खून पानी की तरह मिल गये। इन प्रवृत्तियो मे दर्शक और प्रदर्शक मे लगभग कोई भेद नही रहा, कभी दर्शक ही प्रदर्शक वन जाता। इन प्रवृत्तियो के लिये किसी व्यवस्थित रंगमंच की आवश्यकता नही होती, मंदिर का अहाता, गाव तथा शहर का चौराहा या कोई भी सार्वजनिक स्थान या मेलो के विस्तृत मैदान ही इनके लिये सार्वजिनक रंगमंच वन जाते।

इन सार्वजनिक प्रवृत्तियों के अलावा राजस्थान मे अनेक व्यावसायिक और गैर व्यावसायिक रंगमंचीय प्रवृत्तियां भी विकसित हुई, जिनमे हमारे अनेक पौराणिक और ऐतिहासिक कथानक नाट्य रूप मे प्रदर्शित किये जाते थे, ये नाट्य खुले रंगमंच पर, जिनका कोई विशेष आकार प्रकार नही था, प्रदर्शित किये जाते थे। गांव और नगर के शौकीन लोग अपने अपने घरो से रंगमंचीय उपकरण जुटाते थे तथा तख्तो से बने हुए रंगमंच पर या ऊंचे चबूतरो पर रात रात भर ये नाटक खेलते थे। इनका कथोपकथन गीतो मे होता था और नृत्य मुद्राओ से उनके प्रभाव को बढाया जाता था। परम्पराओं से ये नाट्य जनता को कंठस्थ याद होते थे और हजारो लोग दूर दूर से आकर इनका आनंद लेते थे। ये खेल अथवा ख्याल राजस्थानी जनता के प्राण बन गए। थोड़े थोड़े अंतर के साथ ऐसे लोक नाट्यो की छै शैलियाँ राजस्थान में प्रचलित हुई जैसे:—कुचामणी ख्याल, तुर्रा कलंगी के खेल, चिड़ के ख्याल, मारवाड़ और मेवाड़ की रासधारियाँ, बीकानेर और जैसलमेर की रम्मतें और भवाइयो के खेल तमाशे। ये सभी शैलियां अपने अपने ढंग से निराली थी और इनमें "चंद मिलागिरी" रिढमल, हरिश्चन्द्र, द्रोपदी स्वयंवर, रुक्मणी मंगल, मूमल महेंद्र, हीरा, अमरसिंह राठौड़, बीखाजी आदि अनेक खेल खेले जाते थे। इन खेल तमाशो में रंगमंच की अनेक मर्यादायें बनी हुई थी, जिनके अंतर्गत वेशभूषा, पोशाक, अभिनय दृश्य, स्थल, स्थितियाँ, गाने नाचने का ढंग साजबाजो का प्रयोग आदि की अनेक परंपराओ का बडी कड़ाई के साथ पालन किया जाता था, जिनसे इन विशिष्ट ख्याल के प्रकारो की विशेषतायें परिलक्षित होती थी, जैसे:—चिड़ावा के तथा शेखावाटी के ख्यालो में रंगमंच की सरलता परन्तु अभिनय और नृत्य गीतों की करामातें अत्यंत प्रबल थी, कुचामणी ख्यालों में गीतो की विविधताओ की विशेषता थी और राजस्थानी भाषा के ख्यालो के साथ लच्छीराम कृत खडी बोली के ख्यालो की ओर झुकाव अधिक था, बीकानेर की रम्मतों में गीत और नृत्यो का था। अभिनेता रंगमंच पर पीछे की ओर बैठे हुए नजर आते और बारी बारी से अपनी जगह से उठ कर अपना पार्ट अदा करते थे। इधर घोसुंडा और चित्तौड़ के तुर्राकलंगी के खेलो मे रंगमंचीय उपकरणो की ओर अधिक ध्यान था। रंगमंच के दोनों ओर दो भव्य अट्टालिकायें बनाई जाती थी जिनमे से स्त्री और पुरुष पात्र गाते नाचते हुए नीचे उतर कर मूल रंगमंच पर आते थे। इधर रासधारियों और भवाइयों के खेल समतल भूमि पर ही खेले जाते थे। जनता चारो ओर बैठकर उन्हे देखती थी। इन खेलो मे गीत और नृत्य की बड़ी अद्वितीय छटा थी। इन खेलों की व्यावसायिक मंडलियां भी बनी जो गांव गांव, नगर नगर घूम कर अपनी आजीविका के लिए अपने खेल तमाशे करती थी। इन सब खेलों को आधुनिक सिनेमा तथा अन्य मनोरंजनों के साधनों से बडी क्षति पहुंची। पिछले २० वर्षों मे जनता सार्वजनिक रंगमंच का महत्व भूल कर

व्यावसायिक रंगमंच की ओर अधिक झुक रही है। रंगमंच पर खुद नही आकर दूसरो को रंगमंच पर देखना अधिक पसन्द करती है और दर्शक की हैसियत को प्रदर्शक की हैसियत से ज्यादा अच्छा समझती है। इस मनोवृत्ति ने हमारी इन सामुदायिक नाट्य परम्पराओ को बड़ी क्षति पहुचाई। पहले ये नाट्य इतने लोक प्रिय और प्रचलित थे कि सारा जन समुदाय इन्हें याद रखता था और किसी अभिनेता की आकस्मिक अनुपस्थिति के समय दर्शको मे से कोई भी व्यक्ति उठ कर उस पार्ट को खूबी के साथ अदा कर लेता था। ये नाट्य हजारो के कंठो के शृंगार बने हुए थे, परन्तु अब यह स्थिति नही है।

शहरो मे तो यह हालत बिल्कुल ही बिगड़ गई है। राजा महाराजाओ के समय जयपुर, झालावाड़, बीकानेर, अलवर आदि रियासतो मे इन राजाओ की अपनी स्वयं की नाटक मण्डलिया थी जो उनके मनोरन्जन के लिए प्रदर्शन करती और यदा कदा जनता भी उनके दर्शन कर लेती थी। इन मन्डलियो मे प्रवीण कलाकार, नृत्य और संगीतकार काम करते और पारसी नाट्य शैली का उनमे अच्छा विकास हुआ था परन्तु इनका उपयोग बहुत ही छोटे समुदाय मे होता था और राजस्थानी नाट्य परम्परा का उनमे लेशमात्र भी अंश नही था। इन्ही नाटको अथवा बाहर से आई हुई भ्रमणशील नाटक मन्डलियो के प्रभाव से राजस्थान के प्रमुख प्रमुख नगरो मे शौकिया नाटक मण्डलिया स्थापित हुईं जिनमे स्कूल तथा कालेजों के छात्र विशेष रूप से भाग लेते थे। ऐसी शौकिया मण्डलियाँ राजस्थान के लगभग सभी छोटे बडे नगरो मे काफी बड़ी तादात मे बड़े पैमाने पर काम करने लगी। उससे नाट्य कला को प्रोत्साहन अवश्य मिला परन्तु उनसे कोई बड़ा और चामत्कारिक प्रयोग आधुनिक रंगमंच की दृष्टि से नही हुआ। उन सब नाट्य पर पारसी थियेट्रिकल कंपनियो का बहुत प्रभाव था। इसी बीच सवाक् चित्रपट का प्रादुर्भाव होने से इस प्रयोग को भी बहुत क्षति पहुची और जनता सिनेमा के इस चमत्कारिक प्रयोग की ओर आकृष्ट हो गई। राजस्थान के लगभग सभी छोटे और बडे नगरो मे नाट्य गृह स्थापित होने के बजाय सिनेमा गृह बनने लगे और आज तो यह प्रवृत्ति अपनी चरम सीमा तक पहुची हुई है। रंगमंचीय नाटको पर इसका बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ा, जो शौकिया किस्म के नाटक स्कूल कालेजो मे तथा अन्य सार्वजनिक ढंग के होते थे, उनमे भी कमी नजर आई, और जो भी नाटक बचे रहे उनमे भी फिल्मी ढंग के अभिनय, गीत और नृत्यो को प्रोत्साहन मिला।

इन पिछले कुछ वर्षो मे भी शौकियायी रंगमंच मे एक विशेष प्रकार का परिवर्तन आया है, उस पर अब केवल नाटको का ही विशेष स्थान नही है। नृत्य, गीत, वेश विन्यास, एकांकी नाटक, रेडियो नाटक, साज संगीत आदि को विशेष महत्व मिलने लगा है। इन कार्यक्रमो मे लोकनृत्य, लोकगीत भी एक प्रकार के शौक बन गये हैं। इनमें नकली, असली तथा मिलावटी सामग्री जाने अनजाने पेश की जाती है। इनमें

फिल्मी गीत नृत्यों की बहार भी रहती है। शास्त्रीय तथा विशुद्ध लोक शैली के नाटक, गीत, नृत्य आदि की ओर विशेष अभिरुचि उनमें नजर नही आती। फिल्मों के इस युग में अब व्यावसायिक प्रदर्शन मण्डलियाँ लगभग बैठ ही गई है। कोई भी व्यक्ति अब व्यावसायिक स्तर पर नृत्य, गीत तथा नाटको के प्रदर्शन देने की हिम्मत नही करता। इस दिशा मे राजस्थान के कठपुतली दलों का उल्लेख भी करना आवश्यक है, जिन्होने अभी तक इस रंगमंच की बडी हिम्मत के साथ रक्षा की है। ये कठपुतली दल आज भी सैकड़ों की तादाद में अपना एक मात्र कठपुतली खेल "अमरसिंह राठौड़" प्रदर्शित करते हैं। ये राजस्थान की सीमा के बाहर भारतवर्ष के सुदूर क्षेत्रो में भी पहुँच जाते है। यद्यपि इन के खेल में अब नाट्य की दृष्टि से अनेक विकृतिया आगई हैं और उनमें नये प्राण फूँकने की आवश्यकता है, फिर भी उनका यह प्रयत्न प्रशंसनीय है।

इधर एक नवीन और उज्ज्वल प्रयोग की दृष्टि से उदयपुर के भारतीय लोक कला मण्डल के प्रदर्शन दल ने रंगमंच की दृष्टि से महत्वपूर्ण कार्य किया है। यह दल राजस्थानी लोक नृत्य तथा लोक नाट्यो को उनके मौलिक रूप में आधुनिक रङ्गमंच के योग्य परिमार्जन के साथ सफलता पूर्वक प्रस्तुत करता है। उसने समस्त भारतवर्ष में राजस्थान का गौरव बढ़ाया है। राजस्थानी लोक रङ्गमंच के अनेक स्वरूपो को विविध क्षेत्रो से ढूंढ निकालने तथा उन्हें प्रचारित करने में कला मंडल का कार्य बडे पैमाने पर हुआ है।

गौरवशाली रङ्गमंच की दिशा में राजस्थान का अतीत अत्यन्त उज्ज्वल रहा है। वर्तमान नाना प्रकार के परिवर्तन के बीच गुजर रहा है, तो भविष्य अतीत के गौरव को लिए हुए नवीन-रङ्गमंचीय प्रयोग की ओर संकेत कर रहाहै, जिसमें तरुण कलाकार संघ एक महत्वपूर्ण प्रयोग की तरह क्रियाशील है। नवीन रङ्गमंच की कल्पना में अतीत को भुलाया नही जा सकता। उक्त सर्वेक्षण में अतीत की जिन रङ्गमंचीय प्रवृत्तियो का उल्लेख हुआ है, उनकी गरिमा को ध्यान मे रख कर ही राजस्थान में आधुनिक रङ्गमंच की कल्पना की जा सकती है।

११

राजस्थानी चित्रकला

भारतीय चित्रकला, शिल्प और स्थापत्य इन तीन महती धाराओ मे भारतीय कला साधना का यशःप्रवाह देखने मे आता है। भारतीय चित्रकला सौदर्य-सृजन का विशिष्ट माध्यम थी। प्रत्येक नागरिक स्त्री-पुरुष के लिये चित्र-कला की साधना जैसी सरल और सम्भव है वैसी शिल्प और स्थापत्य की नही। अतएव प्राचीन समय से ही चित्रकला का समाज मे व्यापक प्रचार हो गया था और सुरुचिपूर्ण नागरिको के लिए चित्रकला का अभ्यास उनकी संस्कृति का आवश्यक अंग समझा जाता था। संस्कृत के अनेक नाटको और काव्यो मे नायक अथवा नायिका द्वारा चित्र या प्रतिकृति लिखने का अभिप्राय कथा-वस्तु को बढाने मे सहायक होता है। इस सामग्री का स्वतंत्र अध्ययन भी कम रोचक न होगा। रेखा, वर्ण और भाव इन तीन दृष्टियो से उत्तम चित्र के गुणो की परीक्षा की जाती थी। इनमे सर्वोपरि महत्व भाव का है जिसके द्वारा चित्र मे जीवित प्राणी के मनोभावो या चेष्टाओं की प्रतीति होने लगती है। जब समाज मे इस प्रकार चित्र-कला की साधना लोक-व्यापी हुई और उसे प्रतिष्ठित पद प्राप्त हुआ तो उसका फल कला और साधक दोनो के लिए बहुत सुखद हुआ। इसका सर्वोत्तम परिणाम गुप्त-युग की संस्कृति मे प्रकट हुआ। उस समय चित्रकला घर-घर मे व्याप्त हो गयी थी। भित्तिचित्र, पटचित्र, काष्ट-फलकचित्र के असंख्य उदाहरण उस समय कलाप्रेमियो की तूलिका से लिखे गये। अजंता के महान् भित्तिचित्र उसी युग की कृति है। सर्वापहारी क्षय से अवशिष्ट कुछ उदाहरण ही अजंता के गुफा-चित्रो मे हमे प्राप्त है। उस स्वर्ण-युग की सम्पूर्ण चित्र-साधना का तो केवल अनुमान ही किया जा सकता है। गुप्त युग की चित्रकला अन्य कलाओ की भाति सौदर्य और रस की अक्षय स्रोत-धारा है। रसिक का मन उसके रूप और भाव के साथ एकान्त तल्लीन हो जाता है। यह कला अत्यन्त संभ्रान्त है। इसका अर्थ उदात्त और सरलता से अवगत होने वाला है। दर्शक और चित्र के बीच मे कलाकार व्यवधान बन कर नही आता। चित्रो मे लिखे हुए

स्त्री-पुरुष मानो जीवन की गुत्थियों से सीधे उठकर अपना संदेश हमारे कानों मे कह रहे है।

गुप्त-काल मे चित्रकला को जो सौष्ठव और साज-सज्जा प्राप्त हुई उससे आगे उन्नति की संभावना अवरुद्ध थी। यही दशा साहित्य और शिल्प के साथ हुई। कालिदास ने संस्कृत भाषा को जितना मधुर, ललित सरल और सक्षम बना दिया था उससे अधिक परिमार्जित अवस्था अशक्य थी। वही संस्कृत भाषा दो शती बाद के माघ और भारवि के हाथों मे पड कर बोझिल और डरावनी बन गयी थी। नारी के कोमल गात्र जैसा लावण्य और सौकुमार्य उसमें नही रहा। केवल बाणभट्ट ही उस भाषा को वह रूप दे सके जिसमे फिर भी रस की प्रतिष्ठा सम्भव हुई। किन्तु बाण की असाधारण प्रतिभा उस युग मे अपवाद-रूप ही हुई। बाण की विराट् कृति वेरूल के एकाश्मक कैलाश-मन्दिर की भाँति नितान्त भव्य, लोकोत्तर और रस-सिक्त है। कोई भी उससे कम प्रतिभाशाली लेखक उतने विस्तार का संभार सफलता-पूर्वक नही उठा सकता था[1]। चित्रकला के क्षेत्र मे भी हम इसी की आवृत्ति देखते है। लगभग सातवी शती मे गुप्तकालीन कला का वह प्रवाह मन्द पड़ गया। आठवी शती मे बने हुए तिलोरा के कैलाश-मन्दिर मे जो समकालीन चित्र उपलब्ध हैं, उनमे रेखाओं की अवरुद्ध गति स्पष्ट है और भाव-प्रकाशन भी उत्तरोत्तर कुण्ठित होता गया। अजंता, बाघ, सित्तन्नवासल और सीगिरीय की गुफाओं के भित्तिचित्रो के जो कातिमत् रूप थे उनका अनुमान क्या मध्यकालीन चित्रो को देखने से कभी हो सकता है? ग्यारहवी शती से पन्द्रहवी शती तक जिम चित्र-शैली के प्रमाण उपलब्ध होते है उसे कई नामों से अभिहित किया गया है, जैसे जैन शैली, गुजरात शैली, पश्चिम भारतीय शैली अथवा अपभ्रंश शैली। पहला नाम धर्म-विशेष से सम्बन्धित है। यह सत्य है कि इस शैली के अधिकांश क्षेत्र जैन-धार्मिक साहित्य से सम्बन्धित है किन्तु उस क्षेत्र से बाहर भी इस चित्र-शैली का प्रचार था। इसी प्रकार गुजरात और दक्षिण राजस्थान इसके मुख्य केन्द्र थे किन्तु उत्तरी भारत मे भी उस युग मे चित्रों की यह शैली थी। मालवे के मांडूगढ़ मे और काशी के समीप जौनपुर मे लिखे हुए कई सचित्र ग्रन्थ इसी शैली के है। मालवे के राजा भोज के समय मे भी यह चित्र-शैली प्रचलित थी। इस शैली के चित्र बंगाल और उड़ीसा में भी मिले हैं। इस शैली मे चित्र बहुत छोटे प्रायः २$\frac{1}{4}$"×२$\frac{1}{2}$" के ताड़पत्र या कागज के ग्रन्थो पर लिखे हुए है। ग्यारहवो शती से तेरहवी शती[2] तक ताड़पत्रीय ग्रन्थों की प्रथा थी। चौदहवी शती" में कागज का व्यवहार ग्रन्थ-लेखन के लिए होने लगा और

१. देखे लेखक का हर्षचरित का एक सांस्कृतिक अध्ययन।

२. तेरहवी शति (विक्रमी) की कई कागज की प्रतियें जैसलमेर व खंभात आदि के जैन ज्ञान-भंडारो में प्राप्त है। —सम्पादक

कुछ-कुछ ताड़पत्रो का भी पुराना क्रम जारी रहा। पन्द्रहवी शती से त
प्रचलन हट गया[3] और कागज पर ही ग्रन्थ-लेखन और चित्र-विधान होने
कल्पसूत्र, आगम साहित्य के अन्य अनेक ग्रन्थ, त्रिषष्टिशलाका-पुरुष-चरित
चरित, कालकाचार्य-कथानक आदि जैन-साहित्य के ग्रन्थ इस शैली मे ि
गये। इसका सबसे प्राचीन उदाहरण निशीथचूर्णि की हस्तलिखित प्रति (१
है, जो पाटन मे संघवी-ना पाड़ा के भण्डार मे सुरक्षित है। इसी अपभ्रंश शैली
र्गत बहुत से अजैन ग्रन्थ भी मिले है; जैसे बालगोपाल-स्तुति, गीत-गोविन्द, दु
शती, वसन्तविलास (लिपिकाल १४५१ ई०) आदि। वसन्तविलास मे ७६ चि-
लित पट पर चित्रित है और उसी पर बीच-बीच मे छन्द भी लिखे हैं। कविता मे
के उपयुक्त आनन्द की छटा है और चित्रों में भी वही उमंग भरपूर प्रकट हुई है।
मन को इन चित्रो मे वसन्त का उल्लसित वातावरण प्रत्यक्ष होता है।

अपभ्रंश शैली का देश और काल मे विस्तार की दृष्टि से पर्याप्त महत्त्व
उसमे निर्माण की मात्रा भी पुष्कल है। रंग, अलंकरणो की बहुतायत, संक्षिप्त स
मे बहुत अर्थ भरने की क्षमता, इन चित्रो के गुण है और इनमे जो समर्थ चित्रकारों
लिखे हुए उत्कृष्ट चित्र है उनमे तो रेखाओ की सचाई और लिखाई का श्रम या रिया
भी पूरी मात्रा मे है। ऐसी स्थिति मे ये चित्र प्रशंसनीय है। किन्तु सौन्दर्यशास्त्र क
दृष्टि से इस अपभ्रंश शैली की अपनी कमिया है। इसमें भाव-प्रकाशन की वह शक्ति
नही जो उत्तम चित्र की जान होती है। रस-उत्पत्ति की क्षमता इन चित्रो मे कभी
ही आ पाती है। सामान्यतया तो जैसे कठपुतली की आकृतिया खेल मे सामने घूम
जाती है वैसे ही अपभ्रंश शैली के सजे-धजे गुड्डे-गुडियो जैसे ये चित्र हैं। किन्तु इसमे
संदेह नही कि उस युग के सांस्कृतिक-जीवन, रहन-सहन, वेश-भूषा, वस्त्रो की छपाई,
साज-सज्जा, शयन-आसन, घर-द्वार आदि की जानकारी के लिए ये चित्र कोश जैसा
काम देते है। कलाकारों ने अपने समकालीन जीवन की भाषा को चित्रो मे उतारा है।

चित्र-कला के इतिहास की दृष्टि से नवी से बारहवी शती तक के समय मे पूर्वी
भारत मे प्रचलित चित्रो की दूसरी विशिष्ट शैली भी उल्लेखनीय है। उसका नाम पाल
शैली है। उसका क्षेत्र बिहार और बंगाल था। उसके चित्र अपभ्रंश शैली की अपेक्षा
अधिक मनमोहक और भावोन्मुख थे। पाल शैली मे न केवल चित्र बल्कि शिल्प-कला
की मूर्तियों की भी विशिष्ट समृद्धि है। वस्तुतः पाल शैली की अतिशय कीर्त्ति उसके
शिल्प के कारण ही है। कास्य-मूर्तियां और पाषाण-प्रतिमाएं दोनों गुप्त कालीन कला
के महान् उत्तराधिकार को लेकर पालयुग मे पल्लवित हुई! उन्होने पहले युग का कुछ
अंश गंवाया और कुछ नये युग के संस्कार प्राप्त किये। संक्षिप्त स्थान मे सफल आकृति

---

३ पन्द्रहवीं शती (वि०) मे तो ताड़पत्रीय लेखन का कार्य जोरो से रहा। जैसलमेर आदि की सैकड़ों प्रतियें १५ वीं के उत्तरार्द्ध की लिखित प्राप्त है।—सम्पादक

या लेखन की योग्यता पाल-युग ने लिखी हुई पोथियो के चित्रों मे हैं। सुडौल अङ्ग-सौष्ठव, वस्त्र और अलंकारो की समुचित सजावट और संयत प्रयोग-का और रंगो का सुकृत अभ्यास एवं तरावट इन चित्रो मे विद्यमान है। भाव प्रकाशन की क्षमता भी चित्रकारो मे थी किन्तु खेद यही है कि यह शैली धार्मिक बन्धन मे जकड़ी हुई है। इसके जितने चित्र मिले है वे सभी बौद्ध धर्म और साहित्य से सम्बन्धित है। प्रज्ञापार-मिता पोथियो की बहुतायत है। महायान, देवी-देवताओ, बुद्ध के व्यूहात्मक परिवार एवं बुद्ध की जीवन-लीलाओ को लेकर ये चित्र निर्मित हुए। लोक-जीवन और लोक-साहित्य के साथ इस चित्रशैली का संयोग न हुआ हो ऐसा नही माना जा सकता। कोई भी सांस्कृतिक आन्दोलन लोक के साथ सम्पर्क मे आये बिना रह नही सकता। वह लोक-जीवन को संस्कार सम्पन्न बनाता और स्वयं उससे शक्ति ग्रहण करता है। पाल शिल्प और चित्रो मे लोक-साधना का अंश अवश्य आया होगा, किन्तु अपने देश मे पूर्वकालीन चित्रो की रक्षा का इतिहास भी बडा दुःखद है। उत्तरी भारत के हृदय, मध्यदेश के गुप्तकालीन चित्रो का तो एक भी उदाहरण अवशिष्ट नही रहा, कारण यह है कि उस समय के राज्य-प्रासाद, देव-मन्दिर, आवास, नगर, काष्ठ-फलक, चित्रपट सभी कुछ नष्ट हो गये है। केवल शिल्प और मृण्मय उदाहरण ही बचे हैं या छिटपुट कासे की मूर्तियां रह गयी है। ऐसे ही पाल शैली की कला-सामग्री को भी इतिहास का गाढ़ा संकट सहना पड़ा। ये चित्र बिहार और बंगाल की समृद्ध संस्कृति के अंक में जन्मे और प्रतिपालित हुए। पाल-कालीन संस्कृति अपने युग की चन्देल, चोल, चालुक्य, परमार आदि संस्कृतियो की भाति अत्यन्त उदार और सहिष्णु थी। साहित्य और कला, धर्म और दर्शन इन चारो की भरपूर उन्नति देश के प्रत्येक क्षेत्र मे मध्य-युग मे हुई। उनकी पारस्परिक तुलना, सम्पर्क, बहुविधि सम्बन्धो के ओत-प्रोत सूत्र इत्यादि विशेषताओं का अध्ययन बहुत ही रोचक विषय है। बिहार और बंगाल के गुरुकुल केन्द्रों में ग्रन्थ-भण्डार सचित्र पुस्तको से भरे हुए थे। पश्चिमी भारत के ग्रन्थ-भण्डारो से कम समृद्ध पूर्वी भारत के ये सरस्वती-मन्दिर न रहे होगे, किन्तु बारहवी शती के आरम्भ मे विदेशी आक्रमण की जो ज्वाला उत्तरी भारत मे सर्वत्र फैल गयी, उसकी लपटों मे सब कुछ स्वाहा हो गया। पुस्तक-संग्रह भी उस आघात से कुछ नष्ट हो गये, क्षत-विक्षत हुए और कुछ बिखरकर अपने पड़ोसी देश नैपाल मे पहुंच गये। इस आशिक रक्षा के लिए भी हमे कृतज्ञ होना चाहिए। बौद्ध-विहारो के सर्वनाश का समय आया तो भिक्षुको ने अनेक बहुमूल्य पोथियो को रक्षा के लिए नैपाल पहुंचा दिया अथवा स्वयं उनके साथ वहा चले गये। इसीसे सैकड़ो की संख्या मे पाल-कालीन सचित्र पोथियां नैपाल मे सुरक्षित बच गयी। इन सचित्र ताड़पत्री पोथियों के कितने ही नमूने भारत एवं विदेशों के कला-संग्रहो आ गए है, फिर भी नैपाल के बौद्ध मंदिरो मे और भी सामग्री उपलब्ध होने की आशा है।

यहां यह उल्लेखनीय है कि पाल चित्र-शैली जिन ऐतिहासिक कारणो से लुप्त हुई उनसे भविष्य मे उसके लिए कोई संभावना शेष नही रही। उसका अस्तित्व सर्वथा समाप्त हो गया। वह विकसित होती हुई भविष्य की अन्य किसी कला-शैली के साथ सम्पृक्त नही हो सकी। पश्चिमी भारत की अपभ्रंश शैली इस दुष्प्रभाव से बचग यी। उसने स्वाभाविक विकास क्रम से आगे बढ़ते हुए अपने आप को खाद के रूप मे लोक-कला के एक नवीन आन्दोलन मे विलीन कर दिया। पश्चिमी भारत की अपभ्रंश शैली की कुछ निजी विशेषताएं थी, जैसे डेढ़ चश्मी चेहरा, हाथो और पैरो के मोडो मे नुकीलापन, वस्त्रो की फहरान की तिकोनी आकृति, डेढ़ चश्मी से तात्पर्य उस विशेषता से है जिसमे एक आँख तो पूरी दिखाई जाती है और दूसरी आँख का आधा भाग चेहरे मे रहता है और आधा उससे बाहर निकला हुआ। बारहवी शती मे विद्यमान सोमेश्वर ने अपने 'मानसोल्लास' ग्रन्थ (११३० ई०) मे इस विशेषता का उल्लेख 'द्व्यर्द्धाक्षि' के नाम से किया है।

अपभ्रंश शैली के चित्रो मे विकास होते हुए पन्द्रहवी शती के उत्तरार्द्ध मे वह स्थिति आई जब कुछ चित्रो मे डेढ़ चश्मी शबीह का लोप हो गया और साधारण ढंग से दोनो नेत्रो का चित्रण किया जाने लगा। श्री नान्हालाल चमनलाल मेहता के संग्रह मे लगभग डेढ़ सौ गीतों से सम्बन्धित 'गीत गोविन्द' की एक सुलिखित प्रति है। इस प्रति के चित्रो मे डेढ चश्मी शबीह का अभाव है। इसमे पश्चिमी शैली की प्रेरणा से ही चित्रो का अंकन हुआ है किन्तु किसी नवीन उन्मुक्त आनन्द और शक्ति का प्रत्यक्ष होता है जैसा कि 'वसंत विलास' के चित्रो में भी है।

लोक-संस्कृति मे उस युग मे धार्मिक प्रेरणा से नये उत्थान का युग आया। उसी धारा मे रामानन्द, चैतन्य, सूर, तुलसी आदि अनेक महापुरुषो ने लोक-जीवन को नये उत्साह से और नई प्रेरणा से भर दिया। कलाओ पर भी इस उत्थान का प्रभाव अवश्यम्भावी था। विचारो की नई शक्ति पाकर कलाएं जी उठी। वे रस की अभिव्यक्ति का माध्यम बन गई। इनमे भी इस प्रवृत्ति का सबसे अधिक लाभ चित्रकला को प्राप्त हुआ। उसके दीपक मे जैसे नया स्नेह पड गया हो और नई जोत दीप्त हो उठी हो। सोलहवी शती मे लोकाराधन का श्रेय साहित्य को है। सोद्दिष्ट साधना चित्रकला के क्षेत्र मे भी आई। प्राचीन उपकरणो को स्वीकार करती हुई, नूतन का उन्मुक्त स्वागत करती हुई जो रस समृद्ध चित्रशैली विकसित हुई, उसी की संज्ञा "राजस्थानी शैली" है।

भारतीय जनता की रस प्रधान कल्पना और अनुभूति का जो विस्तृत क्षेत्र है उस समग्र का चित्रण राजस्थानी शैली मे और कालान्तर मे उसीसे अनुप्राणित हिमाचल चित्रशैली मे प्राप्त होता है। जनता के काव्य, संगीत और नाट्य से भी इस कला का घनिष्ठ सम्बन्ध था। प्रेम इस कला का मूलमन्त्र है। कहा जा सकता है कि प्राकृतिक

दृश्यों की लिखाई मे जैसी उत्कृष्ट सफलता चीनी चित्रकारों को प्राप्त हुई थी कुछ वैसी ही सिद्धि, प्रेम के क्षेत्र मे राजस्थानी चितेरो को प्राप्त थी। उनकी दृष्टि में प्रेम ही जीवन मे विचित्रता लाने का मार्ग है। सोते हुए हृदय प्रेम के द्वारा नए लोक में प्रवेश करते है। मानवीय प्रेम ही हृदयो को पारस्परिक संयोग मे बाँधने का एकमात्र कारण है। प्रेम के बिना हृदय एक दूसरे से पृथक बने रहते हैं। राधा और कृष्ण के रूप मे जगतीतल के स्त्री और पुरुष, प्रेम के लोक मे अपने आपको मूर्तिमंत देखते हैं। स्त्री पुरुष का प्रेम व्यवहार राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला की झाकी मात्र है। प्रेम की यह सरस, सुबोध और सुन्दर व्याख्या राजस्थानी चित्रकारों के हाथों मे खूब फूली-फली, जिसके फलस्वरूप अनेक भावात्मक चित्रो की सृष्टि हुई। श्री कुमारस्वामी के शब्दों में 'राजस्थानी चित्रकला की सुन्दर कृतियो को देखते हुए हमारे मन में ऐसा भाव उत्पन्न होता है कि राधा-कृष्ण का पवित्र लीला-लोक हमारे अपने जीवन की अनुभव भूमि है।" यदि हम अपने जीवन मे ही सौन्दर्य के दर्शन नही कर पाते तो अपरिचित और पराई वस्तुओ मे उसे कैसे पा सकते है? अपने गृह-मन्दिरों मे अपने जीवन की लीला मे जो हमे नही मिलता वह हमे कही भी प्राप्त नही हो सकता। ऐसी दृढ़ आस्था राजस्थानी चित्रों की मानस पृष्ठभूमि को आलोकित करती है। इसी कारण ये चित्र स्त्री पुरुषों के नित्य के जाने पहचाने जीवन के सजे-सजाये आलेखन प्रतीत होते हैं।

राजस्थानी चित्र शैली स्त्रियों की सुन्दरता की खान है। भारतीय नारी के आदर्श सौन्दर्य की उसमें पूरी छटा है। कमल की तरह उत्फुल्ल बड़े नेत्र, लहराते हुए केश, घन स्तन, क्षीण कटि और ललित अङ्ग-यष्टि। भारतीय स्त्री के हृदय मे प्रेम का अटूट भण्डार है। उसका प्रवाह मानो इन चित्रों मे बह निकला है।

अनेक प्रकार के चटकीले रंगो का प्रयोग इन चित्रो की विशेषता है। भाति-भाति के चटक रंगो को एक साथ सजाने का रहस्य इन त्रित्रकारो को विदित हो गया था। लाल, पीले, हरे, बैंगनी, किरमिजी, काले. सफेद और सुनहले रंगों की खुलाई चित्रो को अत्यन्त मनोहर बना देती है। कही कही तो चतुर चित्रकार अनेक रंगो के साथ क्रीड़ा करते हुए जान पड़ते हैं।

राजस्थानी चित्रों के विषय बहुत विस्तृत है। राधा और कृष्ण की लीला, अनेक प्रकार की नायक नायिकाएं, रामायण महाभारत की कथाएं, ढोला-मारू, माधवानल-काम कंदला सदृश लोक कथाएं, स्त्री-पुरुषो के शृंगार-भाव, ऋतुओं के चित्र और बारहमासा तथा राजाओ की प्रतिकृतियां या शबीह इन चित्रों के विस्तृत विषय हैं। लेकिन इन की सबसे बड़ी विशेषता रागमालाओ का चित्रण है, जिसके लिये राजस्थानी शैली भारतीय चित्रकला मे अनोखा स्थान रखती है।

राग और रागिनी संगीत के विषय हैं, किन्तु काव्य और चित्र के साथ भी

उनका सम्बन्ध है। प्रत्येक राग और रागिनी के पीछे जो मनोभाव है उसको पहिचान कर उसकी चित्रात्मक लिखाई से ही राग-रागिनी के चित्रो का स्वरूप निष्पन्न हुआ है। उदाहरण के लिये टोडी रागिनी के चित्र मे एक युवती वीणा बजाती हुई दिखाई जाती है, जिसके संगीतस्वर से आकर्षित होकर मृग चारो ओर से घेरते हुए दिखाए जाते है। राग का "टोडी" नाम दक्षिण भारत से लिया गया है, जहा मध्यकाल मे मलावर प्रदेश 'तोढी मण्डलम्' के नाम से प्रसिद्ध था। वीणा दक्षिण का प्रसिद्ध वाद्य है। चित्रगत राग का तात्पर्य स्पष्ट है। उससे यही ध्वनि निकलती है कि कोई युवती किशोरावस्था को पीछे छोड़कर यौवन मे पदार्पण करती है। उसके सौन्दर्य-संगीत से आकृष्ट होकर मृगरूपी प्रेमी युवक उसके चारों ओर एकत्र हो रहे है। बिलावल राग के चित्र मे यौवन गर्विता नायिका दर्पण मे अपना सौन्दर्य देखकर अपने ही रूप पर रीझती हुई दिखाई जाती है। भैरवी रागिनी के चित्र अत्यन्त प्रसिद्ध और सुन्दर हैं। इनमे शिव की प्राप्ति के लिए शिव-पूजा मे निरत स्त्री अंकित की गई है। वसन्त राग के चित्र भारतीय वसन्त ऋतु के मानसिक उल्लास और प्राकृतिक सौन्दर्य को प्रकट करते है। प्रायः मृदंग बजाती हुई सखियों के साथ नृत्य से थिरकते हुए कृष्ण इन चित्रो के विषय है। भैरवी, मालव, श्रीराग, वसन्त, दीपक और मेघ, इनका सम्बन्ध छह ऋतुओ से है और प्रत्येक राग का सम्बन्ध पाच या अधिक रागिनियो से है। इन सबसे चित्राकन मे चित्रकारो को भाव और सौन्दर्य का विस्तृत क्षेत्र प्राप्त हुआ और इस प्रकार राजस्थानी चित्र-शैली भारतीय जीवन की व्यापकता के साथ मिल गई।

राजस्थान, गुजरात की सीमा के समीप इस शैली का पूर्वोदय हुआ होगा। अवश्य ही उदयपुर, मेवाड़ और मालवा मे इसकी आरंभिक लीला-भूमि होनी चाहिए। उस सामग्री का सुव्यवस्थित अनुसंधान कर्तव्य शेष है। सोलहवी शती के निश्चित उदाहरण अभी तक उपन्यस्त नही किये जा सके है। किन्तु शैली के विकास की दृष्टि से यह माना जा सकता है कि जिस चित्रकला का मध्यान्ह सत्रहवी शती मे हुआ होगा उसका आरम्भ लगभग एक शती पूर्व तो हुआ ही होगा। डाक्टर आनंदकुमार स्वामी अपनी पारखी आख से कुछ राजस्थानी चित्रो की शैली सोलहवी शती की स्वीकर करते है। इस विषय मे अभी इस शैली के समुचित अध्ययन से और नई जानकारी मिलने की आशा है। शनैः शनैः राजस्थान के पूरे क्षेत्र मे यह चित्र शैली व्याप्त हो गई और उदयपुर की भाति अनेक राज्यो मे इसके रचना केन्द्र स्थापित हो गये। राज्याश्रय से बाहर भी अनेक चित्रकार बराबर चित्र लिख रहे थे। राजस्थान मे शायद ही कोई ठिकाना ऐसा हो जहां इस शैली के चित्र न लिखे गये हो।

राजस्थानी चित्र शैली की श्वास-वायु राज दरबारो के अवरुद्ध वातावरण से नही, जनता के उच्छ्‌वसित वातातपिक जीवन से आई है। सतरहवीं शती मे तो चित्रो

के विषयो का सम्बन्ध राजकीय जीवन से नही के बराबर है। उसमें जीवन का ही आलेखन हुआ है। लगभग तीन शतियो तक लोक-मानस को रस की अभूतपूर्व अनुभूति से इस शैली ने आनंदित किया। देश के वसन्त मे क्रमशः आने वाले मलयानिल की भाति देश के एक कोने से उठ कर इस चित्र शैली ने विस्तृत भूखंड को छा लिया। राजस्थानी चित्रों मे भावों के अपूर्व मेघ जल बरसे है। भाव और कल्पना की अनेक धाराएं इस चित्र शैली में लीन हो गईं। राजस्थानी चित्रकार रंगों के जादूगर थे। उनकी वर्ण-व्यंजना सचमुच किसी अभूतपूर्व नैत्र कौमुदी का सुख देती है। उनके चित्र रस के अक्षय सोते है। सचित्र ग्रंथ और फुटकर चित्रावलीं के रूप मे अनेक भावात्मक चित्रों का अङ्कन राजस्थानी शैली मे हुआ। मनोभावो की चित्रात्मक अभिव्यक्ति राजस्थानी चित्रशैली का प्राण है। मानवीय हृदय सदा रस का अभिलाषी होता है। राजस्थानी चित्र मुख्यतः रसात्मक हैं। अतएव इन चित्रो की भाषा मानवीय हृदय के अति सन्निकट है। श्री कुमारस्वामी के शब्दो मे "राजस्थानी चित्र-कला विश्व की महान् चित्र शैलियाँ में स्थान पाने योग्य है।

१२

राजस्थान के भित्ति चित्र

आदि मानव ने भवन निर्माण की कला सीखने से पहिले ही अपने गुहा-गृहो को विविध रेखा कृतियो से अलंकृत करना आरंभ कर दिया था। ये रेखाकृतिया पशु, पक्षी, आखेट, और विविध देवी देवताओ के रूपो की प्रतीक थी। उनमे यथार्थ की जैसी स्वाभाविकता नही थी, किन्तु मानव के अन्तर मे निरंतर उठने वाली भावाभिव्यंजनाएं शृंखलाबद्ध हो गई थी। उन व्यंजनाओ को मनुष्य प्रकट भी कैसे करता। भाषा का माध्यम नही था। संकेतो की लिपिबद्ध ऐसी परम्परा नही थी जिनके द्वारा वह अपने अन्तर के कुतूहलो को व्यक्त कर सकता। शिला खण्ड, गिरिगुहा, वृक्ष मूल ही एकमात्र साधन थे जिन पर वह अपने भावो को मूर्तरूप दे सकता था, यद्यपि उसकी भावनाओ मे कोई कोमलतम अनुभूतिया नही थी। एक मात्र वे आश्चर्य थे, वे कठिन कर्म थे जिनका उसके जीवन मे एक महत्व था। इस प्रकार की शिलाखण्ड गिरिगुहाएं, पुरातत्व-वेत्ताओ ने खोज निकाली है, जिन पर उन पशुओ की आकृतिया हैं जो अब पृथ्वी पर नही रहे। वे युद्ध और आखेट के दृश्य भी मिले है जिन्होने मानव के बाहुबल की चुनौतिया लिखी हैं।

यही आकृतिया किस प्रकार लिपि के रूप मे परिवर्तित हुई, कैसे भाषा का निर्माण इस चित्र लिपि से हुआ, इतिहास साक्षी है। कालान्तर मे भवन निर्माण की कला किस प्रकार प्रकाश मे आई, किस प्रकार मानव की रसलिप्सा ने इन भवनो को चित्रमय बनाया, क्रमिक विकास की लम्बी कहानी है।

मिश्र के भित्ति चित्र, बैबिलोन के भित्ति चित्र, रोम इटली तथा अन्य देशो के भित्ति चित्रो ने किस प्रकार इतिहास की विषद् घटनाओ को मूर्त रूप देकर हमारे सम्मुख रखा, अतीत के गौरव को जीवन दान दिया, इससे हम परिचित हैं।

यूरोप के उस युग की याद भी ताजा है जब बड़े बड़े चित्रकारो ने भित्ति चित्रण के द्वारा ही अपनी कला को संसार के आगे रखा था।

पन्द्रहवी और सोलहवी शताब्दी के प्रमुख युरोपियन कलाकारों ने भित्ति चित्रों का एक युग ही निर्माण कर दिया था, जिसके उदाहरण हमें आज तक उपलब्ध हैं। लिनार्डो, रैफेल, माइकिल एंजिलो आदि वे प्रमुख कलाकार थे जो भित्ति चित्रण के युग निर्माण मे सहायक हुए।

इस दिशा में हमारा देश तो सबमे आगे रहा है। चित्रों का महत्त्व, उनकी उपयोगिता हमारे देशवासियो ने बहुत पहिले जान ली थी। यहा तक कि भवन निर्माण की परम्परा के साथ ही साथ चित्र लेखन की परम्परा भी उत्पन्न हो गई थी। हमारे यहाँ सर्प, सिंह, वृषभ आदि प्राणी शिलाखंडों पर उत्कीर्ण किये जाते थे और उनकी आराधना अनेक रूपो मे हुआ करती थी। यही नही, अनेक रूप थे जो मानव और पशु के सम्मिश्रण तक सीमित थे।

भारतीय भित्ति चित्र ईसा की तीन चार शताब्दी पहिले ही पूर्णतया विकसित हो चुके थे। हमारे देश मे तो रामायण, महाभारत, पुराणादि ग्रन्थ साक्षी है कि भित्ति चित्रो का इतिहास कितना पुराना है। भगवती सीता ने भगवान राम से प्रार्थना की थी कि मुझे पुनः वे अरण्य दिखलाइये जहाँ चौदह वर्ष काटे है। इस पर भगवान राम ने कुशल चित्रकारो के द्वारा राज महलों मे ऐसे चित्र बनवाए थे जिन्हें देखकर सीताजी ने अनुमान किया था कि मानो वे पुनः वन मे आ गई हैं। महाभारत मे मयदानव कृतियाँ जीवित थी इसी प्रकार कवि कालिदास ने अपने मेघदूत मे अलका नगरी के भित्ति चित्रो की प्रशंसा की है। वाणभट्ट कथा कादम्बरी मे लिखते हैं कि कादम्बरी स्वयं चित्र लिखित सी शोभा संपन्न थी। कादम्बरी के निवास कक्षो मे सभी भित्तिया चित्रमय थी। इसके अतिरिक्त अजन्ता के वे उदाहरण सम्मुख आते हैं जो भित्ति चित्रों मे श्रेष्ठतम कहे जाने योग्य है। बाघ, बादामी, बेरूल, सित्तनवासल और तन्जौर के भित्त चित्र हैं जो भारतीय चित्र पद्धति के गौरव को जीवित रखे हुए हैं।

इन सबसे अग्रगण्य है हमारा राजस्थान, जिसका कोई भवन, चित्रो से खाली नही है। बिना चित्रों के भवन भूतावास समझे जाते हैं। भवन के प्रमुख द्वार पर गणपति द्वार के दोनो और भारी आकृतिया, अश्वारोही अथवा गजारूढ़ सामन्त चित्रित किये जाते है। लड़ते हुए हाथी, सेवक, दौड़ते हुए ऊंट, रथ, घोड़े, गायो के झुंड गोवत्स अथवा कदली पत्र लिखे जाते है। शंख, चक्र, पद्म और पताकायें भी द्वारो पर चित्रित रहती है।

इस दिशा मे जयपुर, कोटा, बूंदी, किशनगढ़, बीकानेर उदयपुर सभी राजस्थान के प्रमुख नगर उल्लेखनीय हैं, किन्तु कोटा इस दिशा मे अधिक सम्पन्न है। सबसे छोटा

नगर होने हुए भी यहा के रसज्ञ श्रीमन्तो ने इसे खूब सजाया है। जहां भी दृष्टिपात करिए, चित्रो के विविध रूप दिखलाई पडते है। दक्षिण के चित्रकारो ने भी कोटा मे रहकर अपनी कला का गौरव प्रकट किया है, तंजोर शैली के अनेक चित्र कोटा के भवनो मे चित्रित है। झाला जी की हवेली, रसिक बिहारी जी का मन्दिर, मथुरा नाथ जी का मन्दिर भित्ति चित्रो के सुन्दर उदाहरण है। राजभवनो मे तथा अन्य बल्लभ सम्प्रदाय मन्दिरो मे भित्ति चित्रो की वह परम्परा अब तक देखी जा सकती है जब कोटा की चित्र शैली ने अपना एक पृथक स्थान बनाया था। *कोटा की चित्र शैली यद्यपि बूंदी से से आई हुई और बूंदी के चित्रकारो की ऋणी है, तब भी उसकी एक विशेषता है जो अपने अस्तित्व को प्रकाश मे ला सकी है।

बूंदी के चित्र, आलेखन की दृष्टि से बड़े श्रम सम्पन्न और विविध है। इनकी कल्पना मूलक अभिव्यक्तिया कृष्णलीला के शृंगारिक प्रसंगो पर आधारित और सौदर्य के विविध भेदो पर आश्रित है। भट्टजी की हवेली ? राजमहल भाग मन्दिरो के अनेक गृह चित्रो से सुसज्जित है। ये आलेखन आकृति मे बड़े शृंखलावद्ध और प्रसंगो को क्रम से प्रकाश मे लाने वाले हैं। इनके रंग आज भी चमकदार सुवर्ण के आलेखनो से सौदर्य सम्पन्न तथा रेखाओ की गतिशील बारीकियो से युक्त है।

राजस्थान मे भित्ति चित्रो को चिरकाल तक जीवित रखने के लिए एक आलेखन पद्धति है जिसे आरायश कहते है। आरायश पर चित्रो को स्याही की रेखाओ से सर्व प्रथम लिखकर रंग भरे जाते है। इसकी एक विशेप विधि है जिसे जयपुर के अस्सी प्रतिशत कलाकार जानते हैं। इस पद्धति का प्रचार सारे राजस्थान मे है किन्तु उसका जन्म जयपुर ही मे हुआ प्रतीत होता है। यह भी सम्भव है कि ये परम्परागत हो। जयपुर मे इसका विशेष प्रसार है। इसके अतिरिक्त यहा की आरायश अधिक सुन्दर और टिकाऊ होती है। जयपुर मे भित्ति चित्रो की परम्परा बहुत विकसित हुई थी तथा यहा के चित्रकार अन्य नगरो मे जाकर अपना कौशल दिखलाया करते थे। जयपुर मे पुण्डरीकजी की हवेली, गलता घाट, रावलजी के महल भित्ति चित्रो के लिए प्रसिद्ध हैं। अनेक भित्ति चित्र असावधानी के कारण नष्ट हो चुके है तथा अनेक हो रहे हैं। तब भी जो कुछ बच रहा है राजस्थान के चित्र प्रेम को प्रदर्शित करने के लिए पर्याप्त है। किशनगढ के भित्ति चित्र अधिक प्राचीन नही हैं। न ये आरायश पद्धति के अनुसार बने है न उनके विषयो मे विविधता ही है। राधाकृष्ण के युगल रूप की झा की ही सर्वत्र पाई जाती है। किशनगढ के भित्ति चित्र आकार मे बहुत बडे नही है और न उसकी संख्या ही अधिक है। जोधपुर के चित्र सवारी, शिकार, कथा प्रसंगो के दृश्यो मे सीमित हैं। यहा के चित्र उदात्त भाव लिये वीर रस के प्रतीक और पीले रंग को अधिकतर लिये हुए है। बीकानेर के राजमहलो के चित्रो मे घुमड़ते हुए बादलो के दृश्य, चमकती हुई

बिजलियो की प्रकाश धारा, उड़ते हुए पक्षी, विविध बेल बूटे और सुवर्ण के आलेखन है। डाक्टर कुमार स्वामी ने बीकानेर के राजमहलों मे चित्रित एक पक्षी युगल का चित्र अपनी पुस्तक मे प्रकाशित किया है जो बड़ा ही सुन्दर और भाववाही है। बीकानेर की अनेक प्राचीन हवेलियो मे चित्र बने हुए हैं जो यहाँ के उस्ताद कहलाने वाले चित्रकारो ने बनाये हैं। ये उस्ताद जाति के मुसलमान है तब भी हिन्दू धर्म के देवी देवताओं से परिचित और भारत की चित्र पद्धति के अनुयायी है।

उदयपुर के चित्र संख्या मे अधिक हैं किन्तु जयपुर का जैसा सौन्दय इन चित्रो मे नही है। भित्ति चित्रों की पद्धति जयपुर, अलवर, कोटा, बूंदी मे ही अधिक प्रस्फुटित हुई, इसका एक छोर वल्लभ सम्प्रदाय की सगुण उपासना है, एक छोर मुगल घरानों के अनुकरण की परम्परा है। कोटा, बूंदी, वल्लभीय उपासना के केन्द्र हैं और जयपुर. अलवर मुसलमान परम्परा के प्रतीक हैं।

राजस्थान ही नही, समस्त भारत की चित्रकला का प्रारम्भ भित्ति चित्रों से हुआ है। कारण कि कागज का अभाव था, काष्ठ फलक छोटे थे। वस्त्रों के नष्ट हो जाने का भय था, इसलिये भित्तिया ही ऐसा सुविधाजनक उपकरण थी जिस पर अपनी भावनाओं को विशद रूप से व्यक्त किया जा सकता था, बड़े से बड़े आलेखन भी सम्भव थे और छोटे से छोटा रूप भी अङ्कित किया जा सकता था। रंग वही प्रयोग में लाये जाते थे जो अधिक समय तक जीवित रह सकें। ये रंग थे प्रस्तर खण्डो के गर्भ से निकले अथवा पत्थरों को पीस कर बनाये। मृत्तिका से प्राप्त हुये राजस्थानी भित्ति चित्रों के रङ्गों मे प्रधान रङ्ग है, हरा पत्थर, हिरमिच पत्थर, रामरज, काजल और गौगौली। ये सभी रङ्ग स्वाभाविक और न उड़ने वाले है। यद्यपि कई स्थानो पर लाल, गुलाबी, नीले का भी प्रयोग है पर वह उन अन्तःपुरो मे जहां के चित्रो की धूप और पानी से रक्षा होती है। ऐसे विविध रंगो से बनाये चित्र अलवर के समीप राजगढ़ नामक ग्राम में हैं। ये चित्र किले की उन दीवारों पर बने है जहा इस नगर के राजा का अन्तःपुर है। चित्रों के विषय है, सुन्दर युवतियों की क्रम बद्ध पंक्तियां। इन आकृतियो मे सुवर्ण और मूल्यवान विविध रङ्गों का प्रयोग किया गया है। समस्त राजस्थान मे इन भित्ति चित्रो की जैसी श्रम साध्यकला अन्यत्र देखने मे नही आती। ये अधिक प्राचीन नही है, तब भी बडे उत्कृष्ट हैं। जयपुर के चित्रो मे केवल गलता के एक मन्दिर मे बने चित्र बहुत सुन्दर है। पर वे नष्ट हो चुके हैं। जितना अंश बच रहा है उसी से उनकी विशेषता का परिचय मिलता है।

जयसलमेर तथा शेखावाटी के कतिपय गाँवों मे भित्ति चित्रों की अधिकता है, परन्तु वे लोककला के अन्तर्गत माने जा सकते हैं। वे अधिक श्रम साध्य और उत्कृष्ट नही हैं।

१३

राजस्थान की भूमि-अलंकरण-कला

राजस्थान मे भूमि अलंकरण 'मांडणो' रूप में विकसित है तो गुजरात मे 'साथिया' तथा महाराष्ट्र में 'रांगोली' के रूप मे पाए जाते है। उत्तर प्रदेशीय मध्यवर्ती भाग मे इन्हें 'सान रखना' एवं 'चौक पूरना' कहते है, तो अल्मोड़ा, नैनीताल जिले मे इन्हें 'आपना' कहा जाता है। माडणो का बिहारी नाम 'अइपन' है। राजस्थान के केवल बूंदी और झालावाड़ क्षेत्र मे लगभग ३०० की संख्या मे मांडणे अब तक प्राप्त हुए है। समस्त राजस्थान में इनकी क्या संख्या होगी, कल्पनातीत है। महाराष्ट्र की रंगावली पुस्तक मे हमे २३४ रंगौली चित्रो का दर्शन मिलता है। गुजरात की 'अलंकारिका' पुस्तक अपने प्रदेश के १४६ साथिया चित्र प्रस्तुत करती है। अवनी बाबू की 'अल्पना' पुस्तक से हमे केवल १२० अल्पना प्राप्त होते हैं जब कि बिहार (मिथिला) और उत्तर प्रदेश से प्राप्त चित्रो की संख्या सबसे न्यून है। किन्तु ये जितने भी भूमि-चित्र हमे उपलब्ध है, यह किसी प्रान्त अथवा किसी प्रदेश मे पाए जाने वाले भूमि-चित्रो की सम्पूर्ण संख्या नही है।

राजस्थान मांडणो की खान है। माडणा-कला के लिए राजस्थान से बढकर अन्य कोई उर्वरा भूमि प्राप्त नही हो सकती। यह भूमि जहा 'राजपूत-चित्रकला' जन्मी, फली-फूली तथा उत्कर्ष की चरम सीमा प्राप्त कर सकी, किसी भी प्रकार अनुर्वरा नही कही जा सकती। कुछ भी हो राजस्थान की भूमि माडणा, मैंहदी एवं राजपूत-चित्रकला की तो पयस्विनी रही है तथा उसे अपने पय से प्रतिपालित कला पर कम गर्व नही है।

रङ्गविन्यास—राजस्थानी चित्रो की सुकुमार रूप-माधुरी एवं रङ्गीन छटा जिस प्रकार हमारे नयनों मे बस जाती है, उसी प्रकार माडणा और मैंहदी भी दर्शको

को प्रभावित किए विना नही रहते । मांडणा केवल दो रङ्गों में ही बनाए जाते
इन दो रङ्गो का प्रभाव अनेक रङ्गों के सम्मिन्लित प्रभाव से किसी प्रकार कम नहीं
माडणों की भूमि अधिकांशतः 'राती' (लाल) अन्यथा भूरी अथवा हरी मांडणों के
सार रहती है। इनमें से किसी भी एक रङ्ग की भूमि पर पानी में घुली हुई,
मांडणा मांडा जाता है। अन्य किसी प्रकार के रङ्ग का इसमें प्रयोग नही होता।
दीपावली के मांडणों मे, मांडणों की मूल आकृति को हीगलू द्वारा उभार दिया
है, अन्यथा सभी मांडणे केवल खड़ी से ही किए जाते हैं। बंगाल के अल्पना
महाराष्ट्र के रांगोली तथा गुजरात के साथिये भी सफेद रङ्ग से ही बनाये जाते
किन्तु न तो उनमे भूमि की वह रङ्गीनी मिलती है और न रङ्गों की एकरसता ही।

बंगाल के समस्त अलपना चित्र मांडणों के समान केवल अयपन से ही
बनाये जाते। कई ऐसे पर्व हैं जिन पर अल्पना बनाते समय गीले और सूखे
रङ्गों की आवश्यकता होती है। वैसे तो रंगीन अल्पना चित्र गीले रङ्गों से ही बनाये
जाते हैं और ये रङ्ग फूलों तथा पेड़ों के पत्तों को निचोड़ कर प्राप्त किए जाते हैं, किन्तु
वहुतों मे सूखे रङ्गों का भी प्रयोग होता है और ये रङ्ग काला, कोयले से, भूरा, ईंट से
तथा सूखी पत्तियों से मैला सा हरा और हल्दी से पीला रंग तैयार किया जाता है।
बंगाल की स्त्रियों की चतुराई है कि वे अपने आवश्यक रंग स्वयं ही तैयार करती हैं
और उन्हें गुजराती तथा मराठी स्त्रियों के समान बाजार पर आश्रित नही रहना
पड़ता।

महाराष्ट्र के रांगोली चित्र मे स्वयं राँगोली की प्रधानता होती है। रांगोली
रंग मे सफेद होती है और चकमक पत्थर को अग्नि मे जलाकर और चूने के समान
पीसकर तैयार की जाती है। यह बरबरी होती है और चुटकी में से आसानी से सरक
जाती है, इसी कारण बाजार से जो अन्य प्रकार के रंग लाये जाते हैं उनमे राँगोली
मिलाकर कुछ बरबरा कर लिया जाता है। गुजराती रंगो मे रांगोली के स्थान पर
कलोटी का उपयोग होता है। रंग बनाने तथा साथिया अथवा राँगोली पूरने की विधि
एक ही समान हैं। मांडणा, अल्पना, रांगोली साथिया इत्यादि में तो अन्याय रङ्गों का
समावेश हो जाता है किन्तु मांडणा अपना प्रारम्भिक रूप नही बदलता। ये सम्पूर्ण
और सभी अवसरों पर केवल सफेद रङ्ग और दीपावली पर हीगलू की पुट के साथ मांडे
जाते हैं।

मांडणों की पृष्ठ-भूमि जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, राती, भूरी अथवा
हरी गोवर के रङ्ग की होती है, जबकि रांगोली में काला अथवा चाकलेटी रङ्ग तथा
साथियों में चाकलेट, मोरपंखी, चटणी, जामुनी इत्यादि गहरे रङ्गों का प्रयोग होता
है। पृष्ठभूमि के अनुरूप ही आकृति में भरने के लिये रङ्गों का चयन किया जाता है।

पृष्ठ-भूमि का रङ्ग रुचि के अनुसार बदला जा सकता है। यदि आकृति मे गहरे रङ्गों का प्रयोग करना हुआ तो पृष्ठभूमि का रङ्ग हलका होगा। यदि पृष्ठभूमि गहरी हुई तो आकृति हल्के रङ्गो मे होगी। चूंकि मांडणो में रङ्ग की विभिन्नता नही होती इसलिए पृष्ठभूमि के हल्के और गहरे रङ्गो में होने का प्रश्न नही उठता।

रङ्गों का उतार चढ़ाव—रांगोली और साथिया बनाने में रङ्गो को भरते समय रङ्गो के उतार-चढ़ाव का पूरा ध्यान रखा जाता है। आकृति मे रङ्ग भरते समय कलाकार को इस बात का पूरा ध्यान रहता है कि वह जहां जिस प्रकार के रङ्ग की आवश्यकता हो उसी प्रकार का रङ्ग भरे। उदाहरणार्थ पत्तियो मे रङ्ग भरने के लिए पहले वे गहरा हरा रङ्ग भर कर उस पर हल्के रङ्ग से नसो की रेखाये बना देती है ताकि पूरा बनने पर मॉंडणे मे वास्तविकता की झलक आ सके।

साधन – बंगाल की अल्पना और राजस्थान के माडणे मॉंडते समय अनेक प्रकार के साधन एकत्रित करने की आवश्यकता नही होती। स्त्री कलाकारो को फुटा, प्रकार, ब्रुश अथवा अन्य किसी प्रकार के उपकरणो को जुटाना आवश्यक नही होता। मांडणे के लिए सरवा मे घुली हुई खडी, रूई अथवा बालो का गुच्छा तथा उनमे खड़ी का घोल भर कर और दबाकर रेखा पूरने के लिए अंगुलिया पर्याप्त होती हैं। बंगालो कलाकार को खड़ी के स्थान पर अयपन तथा अवसर के अनुसार अलग-अलग रङ्गो का भी आयोजन करना पड़ता है। गुजराती कलाकार की चित्र-सामग्री की सूची बड़ी लम्बी है। उसको एक चित्रकार का पूरा आडम्बर, यथा छापे का कागज, टपकी का कागज, कपडे का टुकड़ा, पक्का रङ्ग, रङ्गने का ब्रुश, खडी, फुट, कलोठी तथा भिन्न-भिन्न रंगो की कटोरिया जुटानी पड़ती है। उत्तर प्रदेशीय चौक पूरने और सोन रखने मे भी अयपन आवश्यक होता है। यह दीपावली पर एक चौक, जैसे 'झिलमिली का चौक' कहते लाल, पीले और हरे रंगो मे बनाया जाता है।

जिस प्रकार अन्य प्रान्त की स्त्रिया फुटे से नाप तोल कर भूमि लीपती है फिर उस पर आकृति बनाती हैं वैसे राजस्थानी स्त्रिया नहीं करती है। चाहे मांडणा साधारण हो अथवा टपकी का, सभी बिना किसी यन्त्र की सहायता अथवा नाप त के खुले हाथ से बनाये जाते है। उनको टपकिया लगाने के लिए फुटा की आवश्य नही होती और न समानान्तर रेखायें खीचने के लिये सेट स्क्वायर्स की अथवा गो बनाने के लिए परकार की ही। उनका हाथ स्वयम् ही इतना सधा होता है कि वे वि किसी सहायता के भली प्रकार सुगमता पूर्वक बनाती चली जाती है। आकृति का सु बनाना न बनाना चित्रकार की कुशलता पर निर्भर रहता है। सभी पढते है f पण्डित नही बन जाते, इसी प्रकार सभी स्त्रियां मांड़णा माडती हैं, किन्तु इसका अर्थ नही कि सभी इस कला मे कुशल होती है, किन्तु जिनमे तनिक भी चतुर

सुरुचि एवं चित्रकार की शक्ति होती है, उनके माडरणे वास्तव मे बिना किसी सहायता के ही बड़े सुन्दर और सुघड़ बनते हैं। कूची द्वारा भीगी रेखाओं को रच रच कर बनाया गया माडरणा तो वास्तव मे दर्शनीय होता है। बंगाल की स्त्रियां भी बिना किसी सहायता के मुक्त हस्त अल्पना निकालती है। फुटा एवं अन्य उपकरणो की आवश्यकता तो गुजराती और महाराष्ट्रीय स्त्रियो को ही होती है।

मांडरणा का प्रारम्भ—आकृति को केन्द्र से आरम्भ करने की रीति सभी प्रांतो मे समान रूप से पाई जाती है। इसका मुख्य कारण केन्द्र मे बनने वाले बीजपत्रो की प्रधानता है। इन बीज-पत्रो पर ही समस्त माडरणा आधारित रहता है अतएव जब तक वह पहले न बनाया जाए, मांडरणे का आगे बढ़ना असम्भव हो जाता है।

आकृति-प्रधान और वल्लरी-प्रधान—भूमि अलंकरणों की लोक-कला देश-व्यापी है। कला की आकृतियो एवं उसमे प्रयुक्त होने वाले अभिप्रायो के आधार पर हम देश को दो भागों मे विभाजित कर सकते है। जिनमे पहला भाग होगा आकृति-प्रधान तथा दूसरा वल्लरी-प्रधान।

आकृति प्रधान—इन प्रदेशो में भारतवर्ष का मध्य भाग एवं पश्चिमी तपका आ जाता है, जिसमे राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, दक्षिण भारत तथा उत्तर प्रदेश सम्मिलित है। इन प्रदेशो में पाये जाने वाले अलंकारिक अंकन रेखा गणित के सच्चे प्रतीक है। किसी भी आकृति को फुटा और परकार लेकर पूरे नाप तौल के साथ सिमिट्री का ध्यान रखते हुए बनाया जाता है, जैसा कि देखने से विदित होगा मांडरणा चित्र अपने विशुद्ध रूप मे बने हुए हैं। उनमे कही भी रेखाओं, कोणों अथवा वृत्तों की न्यूनता एवं घटा-बढ़ी नही है। जब कि रागोली और साथिया और टपकियों के माडरणे तो पूरे प्रमाण के साथ बनाये ही जाते हैं। अतएव क्या मांडरणा, क्या राँगोली क्या साथिया, सभी मे रेखाओ का तारतम्य इतना सुन्दर एवं जटिल, आकर्षक, इतना भाव-व्यंजक होता है कि नेत्र देखते रह जाते हैं, कल्पना उनमें उलझ कर गति भूल जाती है, हृदय आनन्द का अनुभव कर विभोर हो उठता है।

वल्लरी प्रधान :—इन प्रदेशों में भारतवर्ष का पूर्वी भाग आता है, जिसमे बंगाल, विहार, उड़ीसा तथा अन्य पूर्वी प्रदेश सम्मिलित है। 'अल्पना' और 'अइपन' मे पुष्प-पत्ते, वृक्ष-पौधे, वल्लरी, पशु एवं पक्षितों की प्रधानता रहती है और उनके द्वारा इस प्रदेश का हरा भरा जीवन हमारे सामने चित्रित हो जाता है। इस भाव मे अल्पना और अइपन अपने देश की हरियाली और वनशोभा के सच्चे प्रतीक बनकर सामने आते हैं। इनमे कमल पुष्प की प्रचुरता मिलती है और यह पुष्प भारतवर्ष के सभी प्रदेशों के अलंकारिक अंकनो में समान प्रचुरता से पाया जाता है। अतएव आकृति

प्रधान देशो में जहाँ इसका रेखामय अंकन पाया जाता है, वहां वल्लरी-प्रधान प्रदेशों मे यह अपने शुद्ध शाश्वत रूप मे अङ्कित मिलता है।

अतएव आकृति-प्रधान अथवा वल्लरी-प्रधान कहने से माडणा-मेहदी का रूप संकुचित नही हो जाता। इससे इतना ही नही समझ लेना चाहिए कि पश्चिम के अलंकारिक अंकन केवल रेखागणित की ही सुन्दर आकृतियां होती हैं और उनमे फूल पत्तियों का समावेश नही होता। गणगौर का गूनां अथवा लगलगते फूल जो समस्त पुष्पो का ही मांडणा है, इसके सुन्दर उदाहरण है। आकृति प्रधान अलंकरणो मे आकृति की प्रधानता रहती है और फूल-पत्तियाँ अथवा वल्लरी उसमे गौण रूप से विद्यमान रहती है। यही बात वल्लरी-प्रधान अलंकरणो के साथ है।

जिन प्रदेशो के मांडणा अथवा अल्पना चित्रों के सम्बन्ध मे हम विचार कर रहे है, उन प्रदेशो की भौगोलिक स्थिति ने अपने अपने अलंकरणों को विशेष रूप से प्रभावित किया है। समस्त पश्चिम जो पर्वतो से भरा है रेखाओं और कोणो द्वारा अपना रूप लेकर मांडणा, रागोली और साथियो मे निखर उठा है। रेखाओं और कोणो मे कला का रोमांस हो सकता है, किन्तु वल्लरी की कोमल कांत माधुरी कहा ? वे मोहक हो सकते है किन्तु सरस नही। पश्चिम जिसे गद्य काव्य कहा जा सकता है तो पूर्व तो समूचा ही काव्य है। यह तो स्त्रियो की कोमलता, उनके हृदय की मधुरता तथा कल्पना की सजीवता ही है कि उन्होने मांडणा अथवा रागोली चित्रो को केवल मोहक ही न रहने देकर उन्हे अपने अन्तर की स्फूर्ति एवं भावनाओ के रस मे डुबो कर सरस बना दिया है, उसमे भी कविता भर दी है।

कल्पना के लिए अवकाश :—भूमि अलंकरणो का प्रारम्भिक रूप जो कुछ भी रहा हो, किन्तु आज के जिस रूप मे उपलब्ध है, उनका कल्पना द्वारा बनाया संवारा रूप है। उनका प्रारम्भिक रूप क्या था और स्त्रियो द्वारा उसमे क्या और किस मात्रा मे हेरफेर किया गया है, इसका अनुमान लगाने तक के लिए हमारे निकट कोई मापदंड नही है। और कुछ भी रहा हो किन्तु माडणो के आज के स्वरूप में स्त्रियो की सजीव कल्पना मूलरूप में विद्यमान है। इनके द्वारा हमे उच्चकोटि के कलाकार के दर्शन होते हैं। उनकी सजीव कल्पना का आभास मिलता है तथा उनके धार्मिक विचारो एवं भावनाओ का परिचय प्राप्त होता है। माडणों में बनने वाली आकृतियों का अपना आध्यात्मिक अर्थ है और वे धार्मिक संकेत चिन्ह हैं। अतएव उनका विशुद्ध प्रारम्भिक रूप उनकी अध्याकृतियो मे बीज रूप मे निहित है, जबकि आस पास बनने वाले एवं प्रति दिवस काम मे आने वाली वस्तुओ के संकेत चित्र स्त्रियो की कल्पना के चमत्कार है।

बंगाल की स्त्रियां अपनी-अपनी कल्पना द्वारा नवीन आकृतियाँ बनाकर अल्पना चित्रों मे मिला सकती है जब कि महाराष्ट्रीय और गुजराती स्त्रियां भी अपनी रुचि के अनुसार रांगोली तथा साथियों मे परिवर्तन कर सकती हैं किन्तु राजस्थान की स्त्रियो को इस सम्बन्ध मे कहां तक स्वतन्त्रता प्राप्त है, कहा नही जा सकता। इसका अनुमान मांडणों के साथ हातड़ी, पावड़ी, भरणी, हीड़, ताखड़ी, बाट, सांठा, गऊ के खुर इत्यादि बनाई जाने वाली आकृतियों से लगाया जा सकता है। अल्पना में भी ताबीज़ (कड़ियां), वलय, बाजू, जशन, सिंदून, शंख, केला इत्यादि की कमी नहीं मिलती। ये आकृतियाँ निश्चित ही प्राचीन नही हैं और इनका समावेश बाद में धीरे-धीरे समय के साथ किया गया है। इस प्रकार की आकृतियों का राँगोली तथा साथियों में अभाव मिलता है।

विशेषता—रेखाओं को एक दूसरे मे गूंथना माँडणा सौन्दर्य की विशेषता है। चटाई की-सी गूंथन सब जगह देखने को मिल सकती है—सोलह बीजनी का पगल्या इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। मांडणो की दूसरी विशेषता दोहरी ओल है। कोई भी आकृति दोहरी ओल बिना पूर्ण नही होती। इसका कारण है मांडणों के अन्दर भराव। दोहरी ओल होने के कारण हर प्रकार का भराव एक दूसरे अलग और स्पष्ट दिखाई पड़ता है तथा उनको एक दूसरे से मिलकर प्रभाव नष्ट होने से बचाता है। मांडणों की तीसरी विशेषता उसके चोया, झौरा, छोटे-छोटे माँडणे तथा फूलड़ा-फूलड़ी है। चोया, झौरा इत्यादि तो चाहे मांडणा बड़ा हो अथवा छोटा सभी मे समान रूप से मिलते है, क्योंकि वे ही तो मांडणे को सौंदर्यमय कर उसको निखारते है। अन्तिम दो प्रकार के अलंकरण केन्द्रवर्ती आकृति के पूरक अंग हैं और उसकी समृद्धि के परिचायक हैं। छोटे-मोटे माँडणो का भाव बंगाल के अल्पना चित्रो मे भी देखने को मिलता है। राँगोली और साथियों में चोया और छोगा का भाव मिलता है, किन्तु बड़ी अल्प मात्रा में।

समानता—केवल एक आकृति के सिवाय अन्य सभी प्रान्तो के मांडणे एक दूसरे से बनावट और सजावट में भिन्न है। अभिप्राय एक से मिल जाते है, किन्तु बनावट समान अभिप्रायों को भी भिन्न ही रहती है; जैसे कमल का पुष्प। माँडणो मे आठ टपकी का माँडणा तथा राँगोली में आठ टपकी की आकृति और सब रूप से समान होते हुए भी अपनी अपनी विशेषता लिए हुए हैं। राँगोली केवल एक रेखा मे साधारण सी आकृति है जब कि मांडणों मे दोहरी रेखा, कोणों को आवृत करने वाले चार गोले, कलश इत्यादि उसकी विशेषता है। इनके अतिरिक्त समान अभिप्रायो के मांडणों में पगल्या अथवा पद चिह्न आते है।

महाराष्ट्र और गुजरात की स्त्रियो के लिए प्रति दिन रागोली काढ़ने और साथिया

पूरने के लिए उपयुक्त अवसर होता है। प्रति दिवस उठते ही इनका प्रथम कार्य घर के परस (चौक) में थोडी सी जगह लीप कर रागोली अथवा साथिया पूरने के उपयुक्त वना देना है। इसके पश्चात् पवित्र किए हुए स्थान पर वे स्वस्तिक अथवा राम नाम काढ़ देती हैं। तुलसी वृंदावन प्रत्येक मराठा-गृह की शोभा है। फर्श पर लीपा जाए अथवा नही किन्तु तुलसी वृंदावन पर तुलसी के वृक्ष के चारो ओर थोड़ा-थोड़ा लीप कर रागोली काढना अति-आवश्यक होता है। इनके अतिरिक्त भोजन पर वैठते समय थाली रखने के स्थान पर रांगोली काढना भी कम आवश्यक नही, यह महाराष्ट्र की प्रचलित रीति है।

जहाँ ज्योनार में एक साथ वहुत से व्यक्ति भोजन करने वैठते है वहाँ प्रत्येक थाली अथवा पत्तल के सामने रांगोली काढना संभव नही हो सकता। ऐसे अवसरों के लिए रांँगोली उपयुक्त साधन है। इससे एक-सी लम्वी ओल खीचते चले जाते है और प्रत्येक व्यक्ति के वैठने के लिए अलग आसन निश्छित कर देते है। रागोली में भिन्न-भिन्न रंग भर कर दो या तीन रंगो में भी रागोली काढ़ी जाती है। महाराष्ट्र की यह रीति अन्यत्र देखने को नही मिलती।

वनाने के अवसर—राजस्थान अथवा वंगाल की स्त्रियो के लिए उनके दृष्टिकोण से जो पवित्र एवं धार्मिक दिवस होता है अथवा जव उनका व्रत हो जैसे सत्य नारायण की पूर्णिमा, अमावस,एकादशी, प्रत्येक प्रदोप इत्यादि; अथवा घर में किसी व्यक्ति का स्वागत करना हो, अथवा किसी अन्य कारण वश गृह को स्वच्छ करना आवश्यक हो गया हो तो वह दिवस माडणा अथवा अल्पना के लिए उपयुक्त अवसर वन जाता है। राजस्थान में महाराष्ट्र तथा अन्य दक्षिणी प्रदेशो के समान प्रति दिवस माडणा माडना जरूरी नही, किन्तु जिस दिन गृह को स्वच्छ किया जाता है, उस दिन माडणा माडना किसी भी प्रकार भुलाया नही जा सकता। महाराष्ट्र, तामिल और तेलगू प्रान्तो की तो रागोली प्रति दिवस की महत्वपूर्ण कला है। जिस प्रकार एक धार्मिक हिन्दू के लिए प्रति दिवस प्रातःकाल उठ कर ईश्वरोपासना अनिवार्य है उससे किसी भी प्रकार से कम रांगोली काढने का कार्य नही होता।

इनके अतिरिक्त पुत्रजन्मोत्सव, यज्ञोपवीतोत्सव-मुन्ज वन्धन, विवाहोत्सव-लगन (महाराष्ट्र) तथा दीपावली, होली, मकरक्राति (राजस्थान), श्री पंचमी (वसन्त पंचमी) प्रवोधिनी एकादशी, महाराष्ट्रमी पूजा एवं सुख रात्रि इत्यादि (विहार) तथा रक्षा वंधन एवं अन्य सभी त्यौहार (उत्तर प्रदेश) इन शुभ अलंकारिक अंकनो के लिए उपयुक्त अवसर और पर्व होते है। इन अवसरो अथवा पर्वों पर माडणो का धार्मिक स्वरूप स्पष्ट हो जाता है।

मांडणे का उद्देश्य—मांडणा मांडने का मुख्य उद्देश्य धार्मिक भावनाओ का परिमार्जन है। शुभ-अशुभ का जो विश्वास स्त्रियों मे बस गया है, वही आज इन माडणो का मुख्य कारण बन गया है। इनका यन्त्रात्मक अथवा आध्यात्मिक महत्व कुछ भी रहा हो, किन्तु आज तो इनका महत्व भावात्मक है। राजस्थान मे लीपना करते समय स्त्रियों को अशुभ का भय लगा रहता है, क्योंकि लीपने को सूना छोड़ना अमंगल-कारक माना जाता है। इसके लिए उनको लीपे हुए स्थान पर माँडणे के नाम से कुछ बनाना अनिवार्य-सा हो जाता है। राजस्थान मे तो इसका यहां तक महत्व है कि जब तक लीपे हुए स्थान पर वे कुछ मांड नही देती किसीको चलने फिरने नही देती और चलना इतना ही आवश्यक हो और माडणा मांडने का अवकाश न हो तो उस स्थान पर गेहूँ के दाने बिखेर देती है अथवा पत्ते डाल देती है। यही भावना रांगोली के मूल मे भी काम करती है। जिस समय घर में कोई मौत हो जाती है, उस काल मे जितनी बार भी लीपना किया जाता है, उस पर मांडना मांडा जाता अथवा रोली काढ़ी जाती है। अतएव रांगोली का लीपने पर अभाव होना अशुभ का सूचक है।

जैसा कि महाराष्ट्र की स्त्रियों का विश्वास है भित्ति (भीत) अथवा फर्श पर झाडू लगाने से अनेको रेखाएं बन जाती हैं। ये रेखायें सूक्ष्म होने के कारण हमें दृष्टिगोचर नही होती, किन्तु, इनमे एक प्रकार का कंपन होता है। ये रेखायें अनियमित होने के कारण इनमें होने वाला कंपन भी अनियमित होता है और हमारे शरीर एवं दृष्टि के लिए हानिकारक और अशुभ होता है। जिस प्रकार शब्द-स्वरूपी कंप का परिणाम रोग, लोभ, मोह इत्यादि के रूप में हमारे शरीर और मानस पर प्रभाव डालता है उसी प्रकार अनियमित रेखाओं का कंप भी हमारी दृष्टि और शरीर को, यद्यपि हम उसे अनुभव नही कर पाते परोक्षरूप से प्रभावित करता है। इस कंप के अनिष्टकारी परिणाम को टालने के लिए व्यस्थित रूप से रेखायें डालने और यंत्र बनाने की परम्परा डाली गई है। जैसे सर्व प्रकार के अनिष्टो को दूर करने वाला स्वस्तिक चिन्ह माना गया है, उसी तरह अन्य यन्त्रो अथवा आकृतियो के भी अपने २ आध्यात्मिक महत्व माने जाते है।

इस प्रकार अलंकरण बनाने का मुख्य उद्देश्य धार्मिक भावनाओ का परिमार्जन तथा गृह का वातावरण स्वच्छ एवं पवित्र रखना है। यंत्रों मे देवताओं का आवास माना जाता है, अतएव उनके द्वारा घरों मे देवताओं का निवास रहे और सबका कल्याण हो। ये भूमि-अलंकरण शुभ हैं, मंगलकारी हैं, यह सब मानते है और इसी उद्देश्य को लेकर इतने श्रम और रुचि के साथ घर के कोठो और आंगण में, उत्कीर्ण किए जाते है।

टपकियों के मांडणे—टपकियां जोड़कर आकृति बनाना राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र तथा अन्य आकृति प्रधान देशों की विशेषता है। गुजरात और महाराष्ट्र की

टपकियो द्वारा बनाई जाने वाली अधिकांश आकृतियां वर्ग में, कतिपय आयत तथा कुछ वेलें इत्यादि होती हैं। ये आकृतियां वर्ग में ऊभी और आडी टपकियां लगाकर बनाई जाती है। गुजरात के साथियो में टपकियो द्वारा बनाये गये 'जल-शोभा' एवं 'प्रभात' सुन्दर चित्र है।

गुजरात, महाराष्ट्र एवं राजस्थान की टपकियो की आकृतियो की तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर विदित होता है कि गुजरात के साथिया चित्र गलीचे के लिए अधिक उपयुक्त हो सकते हैं, तो महाराष्ट्र की टपकियां चित्रमय अधिक हैं और राजस्थान के चित्र मे जालियो के सुन्दर नमूने उत्कीर्ण हैं। राजस्थान के टपकियो के माडणो में पक्षियो तथा दृश्यो इत्यादि के लिए तनिक भी स्थान नही है।

उत्तर प्रदेश में पाई जाने वाली आकृतियो की संख्या बहुत कम है। इनमें चौक पूरना और सोन रखना दो प्रकार की आकृतियां विशेष पाई जाती है। चौक बड़े साधारण हैं। इनकी राजस्थान के चौको से तुलना नही हो सकती। हा सोन की आकृतियां सुन्दर और कलामय है जो टपकियां लगाकर बनाई जाती है और माडणो से पूर्णतः मिलती हैं। उनकी विशेषता यह है कि उस आकृति को राजस्थान की स्त्रियां साधारण रूप से और आगे बढ़कर उसी में गर्दन, पूंछ और पंजे जोड़कर उसे पक्षी का रूप दे देती है।

इस प्रकार हम देखते है कि एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश, एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त की आकृतियो के मूल और अभिप्रायो में भेद होते हुए भी जिस उद्देश्य को लेकर वे बनाई जाती है वह सिद्धान्ततः एक ही है। जिन-जिन अवसरो पर वे बनाये जाते हैं उनमें भी इतनी विषमता नही मिलती और न असमानता ही मिलती है। यह भी हम देख चुके हैं कि स्त्रियो की कल्पना बड़ी सजीव होती है तथा उनमें दैनिक व्यवहार में आने वाली वस्तुओ को माँडणो के साथ संकेत रूप में उत्कीर्ण करने की अपार क्षमता है। वे अपनी कल्पना को मूर्तरूप प्रदान करने में प्रवीण है।

नवल प्रिंटिंग प्रेस चौडा रास्ता, जयपुर।